हिन्दूधर्मकी बालपोथी।

हिन्दूधर्म्म की बालपोथी ।

प्रोफेसर आनन्दशंकर बापुभाई ध्रुव

एम० ए० एल-एल० बी०

प्रो-वाइसचान्सलर काशी हिन्दूविश्वविद्यालय

अनुवादक—

पण्डित गंगाप्रसाद मेहता एम० ए०

प्रोफेसर हिन्दूविश्वविद्यालय काशी ।

महताब रायके प्रबन्धसे ज्ञानमण्डल यन्त्रालय,

काशीमें छपकर प्रकाशित हुआ ।

सं० १९७८ | मूल्य ॥।=)

निवेदन

हिन्दू बालकोंके कोमल हृदयोंपर धार्मिक संस्कार विद्यारम्भके समयसे ही अंकित हों इस उद्देश्यसे यह पोथी रची गई है। इसके लेखक अनेक शास्त्र निष्णात श्रीमान आनन्दशंकर बापुभाई ध्रुव हैं। ये महानुभाव भारतीय दर्शन शास्त्रके अद्वितीय पण्डित हैं और इसके साथ ही साथ इनका पाश्चात्य धर्म और तत्वज्ञानका पाण्डित्य भी कुछ कम नहीं।

यह पोथी बहुत छोटी है किन्तु इसमें हमारे धर्मके सभी तत्व बड़ी ही रोचक रीतिसे दिखाये गये हैं। गुजराती भाषामें इसकी लगभग १५००० प्रतियां बिक चुकी हैं। हिन्दी पढ़नेवाले इस सुप्रणीत पुस्तकके पढ़नेसे वञ्चित न रहें इस हेतुसे मैंने इसका अनुवाद कर डाला है। भारतकी वर्तमान और भावी सन्तानके लिये धर्म-शिक्षण परमावश्यक है। जो ज्ञान-कोष हमें हमारे प्रातः स्मरणीय महर्षियों और महात्माओंसे प्राप्त हुआ है उसका परिचय यदि हमने अपने बालकोंको न कराया तो हमारी परम-पुनीत सभ्यताका विलोप हो जायगा। आशा है कि हमारे देशबन्धु धर्म-शिक्षणकी ओर ध्यान देंगे।

प्रूफ पढ़नेका अभ्यास न होनेके कारण इस संस्करणमें कुछ त्रुटियां हो गई हैं जिन्हें पाठक क्षमा करेंगे।

काशी विश्वविद्यालय } **गंगाप्रसाद महता**

प्रस्तावना

धर्मशिक्षणके लिये यह छोटी बालोपयोगी पुस्तक महाराज श्री सयाजी-रावकी आज्ञानुसार तैयार कर प्रकाशित की गई है। निम्नरीतिसे इस पुस्तकके विषयका विवेचन किया गया है:-

आरम्भमें 'हिन्दूधर्म'—शब्दका अर्थ समझाकर, उसके शास्त्रोंका ऐतिहासिक क्रमसे विभाग किया गया है। तत्पश्चात् इस विषयके पांच खण्ड किये गये हैं। **प्रथम इतिहास खण्ड**—इस भागमें हिन्दू धर्मके इतिहासके सात चित्र अंकित किये गये हैं। बालक विषयको सरल रीतिसे समझ सकें इस कारण उसका निरूपण प्रकरणबद्धरूपमें नहीं, किन्तु वार्ताके रूपमें किया जाना चाहिये। यही शिक्षण शास्त्रका सर्वमान्य नियम है जिसका अनुसरण इस पुस्तकमें किया गया है। इसके बाद हिन्दू धर्मके तत्वोंका निरूपण किया गया है। इसमें हिन्दू धर्मकी तीन शाखाओंमेंसे पहली शाखा जो 'वेदधर्म' है उसके सामान्य तत्वोंका वर्णन है। वेदधर्ममें सबसे पहले ईश्वर संबंधी ज्ञानकी चर्चा की गई है। ये सब बातें पुस्तकके **दूसरे खण्डमें** हैं तत्पश्चात् **तीसरे खण्डमें** आर्य धर्म-जीवन अर्थात् वर्ण-आश्रम-संस्कारादि संस्थाओंका निरूपण किया गया है। **चतुर्थ खण्डमें** आत्मा और परलोक विषयक विचार है। इस क्रमसे हिन्दू-धर्मका विवेचन किया गया है। अन्तके **पांचवें खण्डमें** जैन-धर्म और बौद्धधर्मके, जो हिन्दू धर्मकीही शाखायें हैं तत्वोंका वर्णन किया गया है।

ब्राह्मण, जैन और बौद्ध ये तीनों ही एक ही महावृक्षकी डालियां हैं। इस

कारण पहले मेरा विचार इन तीनोंको मिलाकर निरूपण करनेका था। महाराज श्री सयाजीरावकी धर्म शिक्षा समितिका भी यही आदेश था, किन्तु इस प्रकार मिलाकर हिन्दू धर्मके विवेचनसे किसी तरहकी भ्रान्ति या दोष उत्पन्न होनेकी संम्भावनाके कारण तीनों धर्मोंका पृथक् पृथक् निरूपण साधारण पद्धतिसे किया गया है। तथापि पाठकों का ध्यान बारबार इस ओर आकर्षित किया गया है कि तीनों धर्म एकही महावृक्षकी शाखायें हैं।

हिन्दू-धर्मके तत्वोंको समझाना इस पुस्तकका उद्देश्य है। हिन्दू-धर्मके केवल आचार-विचारोंका बालकोंका परिचय करा देना, आजकलके समयमें पर्याप्त न होगा। इससे हिन्दू धर्मके प्रति उन्हें श्रद्धा उत्पन्न न होगी। यदि श्रद्धा हुई भी तो वह वर्तमान विचारयुगमें निष्फल है। धर्मका विषय इस युगमें ग्राह्य और चित्ताकर्षक तभी बन सकता है जब वह विचार और युक्तिसे सिद्ध किया जायगा। मुझे आशा है कि धर्मके तत्वोंको विचार और युक्तिद्वारा समझानेकी चेष्टा दोषयुक्त न समझी जायगी।

समझानेके लिये आपसके सवादकी पद्धति ही अच्छी होती है। इस लिये 'गुरु और शिष्य' के सवादरूपसे इस पुस्तकका विषय समझाया गया है। इसमें तत्व-ज्ञानका भी कुछ समावेश करना आवश्यक जान पड़ा, क्योंकि तत्व-ज्ञानके बिना हिन्दूधर्म, रामके बिना रामायणके सदृश है। आशा है कि इस पुस्तकके अनुशीलनसे हिन्दू बालकोंको अपने पवित्र और पुरातन धर्मपर अनुराग और श्रद्धा होगी।

आनन्दशंकर बापुभाई ध्रुव।

अनुक्रमणिका ।

खण्ड १–इतिहास

खण्ड २–ईश्वर

खण्ड ३-वर्णाश्रम धर्म तथा आर्य धर्म जीवन

खण्ड ४-आत्मा और परलोक

खण्ड ५—१ जैन धर्म २ बौद्ध धर्म

(१) जैन धर्म

(२) बौद्ध धर्म

(१)

हिन्दू धर्म क्या है ?

(दीवार पर पृथ्वीका नकशा लटका कर)

बालको ! इस पृथ्वीके नकशे पर नज़र डालो। अपने इस एशिया खण्डमें और अफ्रीका जहां एशियासे मिलता है उस कोनेमें, तुम्हें कितनी ही बड़ी नदियां देखनेमें आती हैं। (१) एक यह नाइल, (२) इसके पास ये दूसरी दो—युफ्रेटिस और टाइग्रिस, (३) एशियाके सामनेके भागमें ये हो-आंग-हो और यांग-से-कयांग, (४) बीचमें ये आमू और सरदरिया, और इनके पास ये काश्पियन सरोवर तथा वाल्गा और युरल नदी, (५) वहांसे चलकर हिन्दुस्तानमें आने पर ये सिन्धु, गंगा यमुना और नर्मदा, और इन्हें उल्लंघन कर दक्षिणमें गोदावरी, कृष्णा और कावेरी। नदीके किनारे अनाज और घास चारे अच्छे हुआ करते हैं। ढोरोंके पीनेके लिये पानी भी खूब होता है, और यदि छोटी छोटी नावें बनाना आता हो तो जलके मार्गसे मुसाफिरी करने और मालके आने जानेमें बहुत ही सुविधायें मिलती हैं। इस कारण प्राचीनकालमें इन नदियोंके प्रदेशमें मनुष्योंने बस कर अपना सुधार और उन्नति की। अर्थात् व्यापार उद्योग, कला, साहित्य, कुटुम्ब

राज्य, धर्म आदि जिन जिन बातोंमें सभ्य मनुष्य जंगली मनुष्योंकी अपेक्षा बढ़े चढ़े हैं इन सब बातोंका इन्हीं नदियोंके प्रदेशमें विकास हुआ।

इनमेंसे पहले दो प्रदेशोंमें उत्पन्न हुये धर्म और हरेक तरहके सुधार नष्ट हो गये। ज़मीन खोदनेपर उसमेंसे बासन, हथियार, अक्षरांकित ईंटें इत्यादि पदार्थ निकलते हैं जिनके आधारपर वहांकी सभ्यताके विषयमें हम कुछ जानते हैं। किन्तु सिन्धु और गंगा यमुनाके प्रदेशमें बसे हुए लोगोंने जैसी पुस्तकें रचीं वैसी नाइल ओर युफ्रेटिस-टाइग्रिसके प्रदेशमें-जो मिस्र, आसीरिया, खाल्दीया, और बैबीलोनियाके नामसे विख्यात हैं—वहांके लोगोंने नहीं रचीं। हो आंग-हो और यांग-से-कयांगका तीसरा प्रदेश जो चीन देश कहलाता है, उसकी सभ्यता अभी कायम है। किन्तु इस देशके लोगोंने भी गंगायमुनाके प्रदेशमें उत्पन्न हुये धर्मको ही स्वीकार किया है। कास्पियन सरोवर और उसके आसपासकी नदियोंके किनारोंपर बसी हुई प्राचीन सभ्य प्रजा आर्यजातिके नामसे कही जाती है। यह जाति बहुत पुराने समयसे ग्रीस, रोम, ईरान, हिन्दुस्तान और जुदी २ जगहोंमें फैल गयी थी। यह आर्य-प्रजा सिन्धु नदीके किनारे बसी, वहांसे गंगा-यमुनाके प्रदेशमें बढ़ी और फिर दक्षिणमें प्रविष्ट हुई। सिन्धु और गंगा-यमुनाके प्रदेशमें इन आर्य लोगोंने जो धर्म फैलाया वही दक्षिण हिन्दुस्तानमें फैला।

हमारा यह मत निःसन्देह ठीक है कि पृथ्वीपर फैले हुये धर्मोंमें सिन्धु और गंगा नदीके प्रदेशमें विकसित हुआ धर्म जितना पुराना है उतना पुराना और कोई धर्म नहीं। इससे और भी महत्वकी बात यह है कि इस धर्मका असर प्राचीन कालमें हिन्दुस्तानके बाहर पश्चिममें मिस्र तक और उत्तर पूर्वमें तिब्बत, चीन और जापान तक, दक्षिण पूर्वमें लंका ब्रह्मदेश, सुमात्रा जावाके टापुओं तक हुआ था। इस धर्मको, हम इसके मूल उत्पत्ति स्थान-सिन्धुके आधारपर 'हिन्दू-धर्म' कहते हैं।

इस धर्मकी प्राचीन पुस्तकें जो हजारों वर्ष पहलेकी हैं, आजतक विद्यमान हैं और यद्यपि इस धर्मके आकारमें देशकालके अनुसार बड़े फेरफार हुये हैं तथापि इसके मूल तत्व अबतक विद्यमान हैं। सिन्धु और गंगाके किनारे बसने वाले प्राचीन आर्योंने जो परमात्माके विषयमें सिद्धान्त स्थिर किये हैं वे ही सिद्धान्त हिन्दू लोग अब तक मानते हैं, और जैसे वे सूर्यके सामने देख उसके तेजमें परमात्माका ध्यान करते, उसकी स्तुति करते और उसे अग्नि द्वारा आहुति देते थे तदनुसार आजकलके हिन्दू भी करते हैं।

ऐसे प्राचीन कालसे चले आते हुये धर्मका स्वरूप हरेक हिन्दू बालकको जानना उचित है। मैं उसे सरल रीतिसे समझानेकी चेष्टा करूंगा किन्तु यदि कोई नवीन बात जानना हो तो उस विषयमें मन लगाना पड़ता है और बुद्धिसे काम

लेना ही पड़ता है, इसलिये मुझे आशा है कि तुम भी ऐसा ही करोगे।

आज तो—इस पृथ्वीके नक़शेकी मददसे-हिन्दू धर्म क्या है, यह धर्म कहां उत्पन्न हुआ और कहां कहां फैला, और वह कितना पुराना है इत्यादि बातोंको याद रखोगे तो काफी होगा।

कला = हुनर। सिद्धान्त = निर्णय।

विकास = उन्नति। अग्नि द्वारा आहुति = यज्ञ, होम।

---

(२)

हिन्दू धर्मके शास्त्र।

आलोचना = निरूपण, विचार

दिग्दर्शन = कुछ विचार करना

सिनेमा—बिजलीके यन्त्रकी मददसे पर्दे पर चलते फिरते चमकीले चित्र दिखाये जाते हैं।

नोट—हिन्दू धर्मके शास्त्रोंके विषयमें विद्वानोंने उनकी रचनाका समय नीचे लिखी रीतिसे निरूपण किया है:—

(१) वेद, श्रुति (संहितासे उपनिषदों तक) वि० संवत् ३०००, १५००, १०००

(२) स्मृति काल—वि. सं. पूर्व ८०० से ५०० विक्रमीय शतक तक,

(३) भाष्य काल—वि. संवत ५०० से १५०० तक,

(४) संत वाणी—॥ ॥ १२०० से १८००

बालको! परमेश्वरको समझना, उसका भजन और उसकी इच्छानुसार काम करना तथा इस भांति अपने और

सबके जीवनका कल्याण करना इसका नाम धर्म है। इस संबन्धमें हिन्दुस्तानमें बहुत प्राचीन कालसे जो पुस्तकें लिखी गई हैं वे हिन्दू धर्मके शास्त्र कहलाते हैं। अर्थात् जिन पुस्तकों में आज्ञाके या ज्ञानके वचन हैं वे ही 'शास्त्र' हैं।

इस शास्त्रके बड़े बड़े क्या क्या विभाग हैं और वे इतिहासमें किस क्रमसे उत्पन्न हुये हैं इस विषयमें कुछ जानना चाहिये। जैसे कल हिन्दू धर्मके भूगोलकी आलोचनाकी गयी थी वैसे ही आज हिन्दू धर्मके इतिहासका दिग्दर्शन किया जायगा। इस इतिहासमें इन शास्त्रोंके तिथि-संवत्के कठिन प्रश्न देकर मैं तुम्हें हैरान नहीं करूंगा।

(१) हिन्दू-धर्मके सब शास्त्रोंका मूल-प्रथम शास्त्र-वेद अर्थात् धर्म संबन्धी ज्ञानकी पुस्तक है। आर्य लोग उत्तर पश्चिम कोणसे आकर सिन्धु नदीके तीर बसे और वहांसे आगे बढ़कर गंगा यमुनाके प्रदेशमें प्रवेश कर पूर्वमें मिथिला (बिहार) तक पहुंच गये। इस समयमें रचनाकी हुई सब पुस्तकोंको 'वेद' नामसे पुकारते हैं। वेदको 'श्रुति'-सुना हुआ ज्ञान भी कहते हैं। कारण यह कि यह ज्ञान ऋषियोंने साक्षात् परमात्माके पाससे सुना था। वेदमें परमात्माकी स्तुति, यज्ञका वर्णन, और परमात्माके स्वरूपके विषयमें विचार किया गया है और इस सम्बन्धकी पुस्तकें क्रमसे संहिता, ब्राह्मण और उपनिषद् कहलाती हैं।

(२) इस समयके पश्चात् जो प्राचीन ऋषियोंने सुना था और सबको सुनाया था उस विषयमें नये ऋषियोंने विचार आरम्भ किया। उन्होंने प्राचीन ज्ञानका स्मरण कर नये ग्रन्थ रचे। ये ग्रन्थ 'स्मृति' अर्थात् स्मरण किया हुआ ज्ञान कहलाते हैं। इनमें परमात्मा संबन्धी विचारको छोड़ पुराने रीतिरिवाज क्या थे और वे किस रीतिसे पालन किये जाते थे इत्यादि विषयोंकी आलोचना है। जुदे २ ब्राह्मण कुलोंने स्मृतियोंकी छोटी २ पुस्तकें रचीं हैं, और उनपरसे (मनु, भृगु, याज्ञवल्क्य) इत्यादि बड़े ग्रन्थ बनाये गये हैं। महाभारत, रामायण और पुराणोंमें इस विषयकी वार्तायें हैं अतएव उनकी भी स्मृतिमें गिनती है। स्मृतियोंके रचनाकालमें तो आर्य लोग सारे हिन्दुस्तानमें फैल गये थे।

(३) इस समयके बाद जब इस तरहकी पुस्तकें बहुत हो गयीं तब इन सबमेंसे धर्म-सम्बन्धी क्या सार निकलता है यह बतलाने वाले आचार्य हुये। उनके बड़े ग्रन्थ 'भाष्य' कहे जाते हैं। ऐसे भाष्य बनानेवालोंमें मुख्य शंकराचार्य, रामानुजाचार्य और वल्लभाचार्य दक्षिण हिन्दुस्तानमें जन्मे थे।

(४) अन्तमें सन्त साधुओंने देशकी प्रचलित भाषामें परमेश्वर विषयक ज्ञान और भक्तिके पद गाये, और धर्म और नीतिका उपदेश किया। यह सन्तोंकी वाणी भी हिन्दू धर्म

के शास्त्रोंमें गिनने योग्य है। कारण यह कि बहुतसे हिन्दू इसे इसी भावसे पढ़ते हैं और इसके रचना करनेवालोंको गुरुके समान मानते हैं। कबीर, नानक, रामदास, तुकाराम, मोरा, तुलसीदास आदि महात्माओंके नाम सारे हिन्दुस्तानमें जाने हुये हैं और इनमेंसे कितनों हीके बड़े पन्थ भी चलते हैं।

अब, इन जुदे जुदे शास्त्रोंके समयका कुछ वृत्तान्त मुझे तुमसे कहना चाहिये। किंतु उस समयका केवल कोरा वृत्तान्त सुनाना तुम्हें रोचक न होगा, अतएव उस समयके कुछ चित्र तुम्हारे समक्ष रखूंगा जो मेरे विचारमें तुम्हें अवश्य रुचिकर होंगे।

सिनेमाके चित्रोंकी सब बात तुम जैसे समझ जाते हो उस रीतिसे इन चित्रोंमेंसे हिन्दू-धर्मका इतिहास तुम समझ सकोगे॥

(२)

विश्वामित्र और नदियां।

[विश्वामित्र वेद कालके ऋषि हैं। वे बिआस (विपाश और सतलज (शुतुद्री) नदीके किनारे खड़े हैं। नदियां दोनों किनारोंके बीच पूर्ण जलसे बह रही हैं। ऋषि और उनके साथियोंको नदी उतरनेकी इच्छा है। ऋषि नदीसे प्रार्थना करते हैं। ऋषि और नदीके बीचका यह निम्नलिखित संवाद है।]

विश्वामित्र—(मनही मन) पर्वतकी गोदसे निकली हुईं ये दो नदियां विपाश् (विआस) और शुतुद्री (सतलज) पानीसे भरी हुईं दौड़ी चली जातीं हैं। ये घुड़सालमेंसे छूटी, हिनहिनाती हुईं घोड़ियों अथवा नाद करती हुईं सफेद गौ माताओंके सदृश लगती हैं।

(नदियोंको सुनाते हुए)

इन्द्रसे ही भेजी हुईं, उसकी आज्ञानुसार ही चलनेकी इच्छा करती हुईं तुम समुद्रके प्रति जाती हो।

सबकी बड़ी माता सिन्धु (शुतुद्री) के पास मैं आया हूं। मैं सुन्दर विशाल विपाश्के समीप आया हूं। जैसे गायें बछड़े की ओर रँभाती हुईं जाती हैं वैसे तुम दौड़ती और शब्द करती हुईं समुद्रके प्रति जाती हो। मैं तुम्हें नहीं रोकूंगा।

नदियां—हां, पानीसे भरपूर हम अपने मिलनेके स्थान समुद्रकी ओर जारही हैं। समुद्रही हमारा ईश्वरसे नियत किया हुआ मिलनेका स्थान है, और यदि एक बार हमें उस ओर जानेकी वह आज्ञा करता है तो हम पीछे फिरतीं नहीं। कहो ऋषि! तुम हमें किस लिये बुलाते हो। तुम्हें क्या चाहिये?

विश्वामित्र—माता जी! ठीक तुम परमात्मा की नियत की हुई सत्यकी सीधी रेखा परही चलती हो, पर कृपाकर यदि तुम मेरे अनुरोधसे घड़ीभर अपना दौड़ना बन्द कर दो

तो अच्छा होगा। मैं कुशिक राजाका पुत्र हूं और बहुत भक्तिसे तुम्हारी रक्षा और कृपाका वरदान मांगता हूं।

नदियां—हाथमें वज्र धारण करनेवाले इन्द्रदेवने हमें पर्वत चीरकर उसकी गुफामेंसे निकाला है। वृत्र नामक दैत्यने हमें चौतरफसे घेर रखा था किंतु इस सारे जगतके उत्पन्न करनेवाले और चलानेवाले इन्द्रदेव हमें बाहर ले आये। उसकी इस सृष्टिके चलाने वाली आज्ञामें रहकर ही हम चलती हैं। इन्द्रदेवका यह स्तुतियोग्य पराक्रम है कि वज्रसे उन्होंने वृत्र और उसके आसपास बैठनेवाले साथियोंको मार डाला। यही कारण है कि हमारा जल जो सदा चलता ही रहता है, बहने लगा॥

विश्वामित्र—हे स्वर्गमें बसनेवाली, स्वर्गसे उतरकर आई हुई बहिनो! मैं इस रथमें बैठकर बहुत दूरसे आया हूं। यह स्तुति सुन कर मेरे लिये तुम नीचे झुको तो मैं उस पार जाऊं। तुम्हारा प्रवाह मेरे रथके नीचे रहे तो इतना ही बस होगा।

नदियां—हे ऋषि! तुम्हारा कहना हमने सुना। तुम इस रथमें बैठकर दूरसे आये हो इसलिये हम झुक जाती हैं।

(नदियोंका जल उतर गया)

विश्वामित्र—तो यह भारत कुलकी सन्तान इन नदियोंके पार उतरेगी। ये लोग पराक्रमी हैं, भूमिकी खोजमें निकले हैं। जैसे इन्द्रकी भेजी हुई तुम जाती हो और तुम्हें कोई पीछे

हटा सकता नहीं वैसे वे भी इन्द्रके भेजे हुये जाँय और विजय प्राप्त करें। उनपर तुम प्रसन्न रहो यही मेरी प्रार्थना है। उस ऋषिपर नदियां प्रसन्न हुईं। पराक्रमी भरत नदी पार उतरे।तत्पश्चात् ऋषिने फिर नदियोंकी स्तुति की, कि तुम फिर जलसे भरपूर हो जाओ और वेगसे बहती रहो कि हमें बहुत धन धान्य मिले।

बालको! तुम्हें इस ऋषि और नदियोंको बात करते सुन अचरज होगा। हमारे प्राचीन ऋषि लोग इस प्रकारसे सूर्य, चन्द्र, वायु, मेघ, अरुणोदय, अग्नि आदि इस सृष्टिके अद्भुत और सुन्दर पदार्थोंमें परमेश्वरका वास देखते थे। इस भांतिका उन्हें अनुभव होता था कि मानो परमेश्वर उनके द्वारा बोलते और उन्हें चलाते हों। इस कारण वे 'ऋषि' (संस्कृत दृश् क्रियापदके आधार पर) अर्थात् देखनेवाले कहलाते हैं।

आकाशमें जैसे तारे चमकते हैं वैसे ही ये सारे पदार्थ परमेश्वरके तेजसे उनकी दृष्टिमें चमकते थे। इसलिये उन पदार्थोंको और उनमें वास करने वाले प्रभुके रूपको वे 'देव' (देव अर्थात् दीप्तिवाला, संस्कृत दिव् धातुके आधार पर) कहकर पुकारते थे।

देवों में मुख्य।

(१) इन्द्र—जो अपने वज्रके द्वारा पर्वतोंको चीरकर दैत्योंसे बांधी हुई गायोंको छुड़ाता है, दैत्योंको मारता है, आर्य्य

लोगोंको युद्धमें जिनाता है वही सर्वशक्तिमान परमेश्वर इन्द्र है। इन्द्र और दैत्योंका युद्ध तो आकाशमें होते हुये बादलोंका तूफान और गर्जनका द्योतक है। वज्र बिजली, और पर्वत बादलोंका द्योतक है। उन पर्वतोंमें बँधी हुई गायें वर्षाकी सूचक हैं।

वरुण और मित्र—सारे विश्वमें व्यापक पाप पुण्य के देखने वाले देव वरुण (२) हैं। उनसे कोई वस्तु छिपी नहीं। रात्रिमें जब सब तरफ अन्धकार छाया रहता है तब भी यह देव जागते रहते हैं। यदि दो मनुष्य कहीं चुपचाप कुछ बात करते हों तो वहां भी यह तीसरा रहता ही है। दिनमें हमारे मित्रकी तरह हमें बुलाने वाले और हमारे कामोंमें सहायता करने वाले परमेश्वर मित्र नामसे पुकारे जाते हैं।

(३) सूर्य-सविता—यह इस जगत्‌के सब पदार्थोंके उत्पन्न करने वाले और चलाने वाले देव हैं।

(४) विष्णु—यह देव विश्वमें व्यापक हैं। इनका धाम मधुरता, सुख और तेजसे भरपूर है।

(५) रुद्र—यह आंधी और प्रज्वलित अग्निमें दिखाई देने वाला परमेश्वरके क्रोध और प्रचण्डताका रूप है।

(६) अग्नि—यह घरघरमें प्रकाशमान परमेश्वरका रूप है। इसमें हवनकी हुई वस्तु देवताको मिलती है अतएव यह देवताओंका होता अर्थात् बुलाने वाला कहा जाता है।

(७) यम—यह हमें नियममें रखने वाला, मृत्युके पश्चात् परलोकका देवता है।

(८) अदिति, हिरण्यगर्भ, विश्वकर्मा, पुरुष—अब कुछ ऊंची दृष्टिसे देखो। यह आकाश अखण्डरूपसे व्याप्त है, इसके टुकड़े हो नहीं सकते। यह सूर्य आदिकी माता 'अदिति' उस परमेश्वरका अखण्ड-अनन्त स्वरूप है। उस परमेश्वररूप तेजके अण्डेमेंसे यह सारा जगत् मानों पर फड़फड़ाकर निकला है। अतः उस परमेश्वरका नाम 'हिरण्यगर्भ' है। इस जगत्का रचने वाला वही है। इसी कारण उसे विश्वकर्मा कहते हैं। वही इस जगत्में आत्मरूप से भरपूर है। इसलिये उसे 'पुरुष' कहते हैं।

ऋषि लोग 'इन देवतारूपी प्रभुकी शक्तियोंकी स्तुति करते, अग्निमें उनके निमित्त आहुति देते और उनसे धन, धान्य, पशु और कुटुम्बका सुख मांगते थे। इसके साथ ही वे यह मानतेथे कि यह विश्व एक सत्यकी ही सीधी रेखापर चलता है। यह विश्व कहांसे आया, किसने रचा, किस रीतिसे रचा गया इत्यादि जगत् और ईश्वर संबंधी गम्भीर प्रश्नों पर वे विचार करते थे।

(४)

हरिश्चन्द्र का यज्ञ।

प्राचीन कालमें हरिश्चन्द्र नामका एक राजा था। उसके

पुत्र न था। नारद मुनि घूमते घूमते राजाके यहां आये। राजाने नारदजीका सत्कार कर पूंछा "महाराज! सब पुत्र-की इच्छा करते हैं इसका क्या कारण है?" नारदजीने पुत्रसे होनेवाले लाभ और पुत्र प्राप्तिके लिये वरुणदेवकी उपासना बतलाई। राजाने वरुणकी उपासना आरम्भ की और यह कहा—वरुण देव! यदि मुझे पुत्र होगा तो मैं तुम्हारा यज्ञ कर उस पुत्रको तुम्हें चढ़ाऊंगा। राजाको ज्योंही पुत्र हुआ त्योंही वरुणदेव आकर खड़े हुए और कहने लगे—राजा, अपने पुत्रका बलिदान दो। राजा सहमा और युक्ति निकाल कर उत्तर देने लगा-वरुणदेव! आप जो माँगते हैं यह उचित है किन्तु अभी १० दिन तो व्यतीत होने दो, १० दिन गये विना बच्चा यज्ञके योग्य पवित्र कैसे माना जा सकता है? वरु-णदेव वापिस चले गये। दस दिनके पश्चात् फिर उन्होंने आकर राजासे लड़केको मांगा। राजाने कहा—जब तक लड़केको दांत न निकलें तब तक वह यज्ञके योग्य नहीं माना जा सकता। वरुणदेव फिर वापिस लौटे और लड़केके दांत निकलने पर फिर आकर उसे मांगा। राजाने कहा, वरुणदेव, ये तो दूधके दांत कहलायंगे, इनके गिर पड़नेपर जब लड़केको पक्के दांत निकलें तब आप पधारिये। वरुण फिर लौटे और बालकको पक्के दांत आनेपर राजाके पास आकर फिर मांगा। राजाने कहा—महाराज, क्षत्रिय कुमार तो जब कवच पहने तभी पवित्र गिना जाता है, इस

लिये उस अवधि तक आइये। वह समय भी आया और वरुणने फिर उसे मांगा। अब तो राजाको कोई दूसरा बहाना न सूझा। अतः उसने राजकुमारको बुलाकर कहा-- रोहित! तुम्हारे जन्मके पहले मैंने वरुणदेवसे कहा था कि यदि मुझे पुत्र होगा तो उसे मैं आपको भेट करूंगा। इसलिये मुझे यज्ञ करके अब तुम्हें बलिदान करना होगा। रोहित घबड़ाया और वनमें भाग गया।

राजाको जलोदर रोग हुआ। रोहितने यह बात मनमें सोची कि अब चाहे जो हो मुझे पिताके पास जाना ही उचित है। रोहित ज्योंही ग्रामकी ओर चला त्योंही इन्द्र मनुष्यका रूप धारण कर, सामने आ उसे कहने लगा—भाई, घर कभी न जाना, घरमें बैठनेवालेका नसीब बैठ जाता है, जो फिरता रहे वही भाग्यशाली होता है। इस प्रकार दो चार बार इन्द्रने रोहितको ग्राममें प्रवेश करनेसे रोका।

पश्चात् रोहितको एक उपाय सूझा। अजीगर्त नामका एक ब्राह्मण, अपनी स्त्री और तीन पुत्र सहित भूखा मरता था। उसे द्रव्य देकर शुनःशेप नामक उसके एक पुत्रको उसने बेचे जाते हुये ले लिया और उसे राजाके पास लेजाकर कहा-मैंने इसे मोल लिया है, मेरे स्थानमें इसका बलिदान करो। राजाने वरुणके पास जाकर कहा—वरुण देव! मेरे पुत्रके बदले इसका बलिदान स्वीकार कीजिये। वरुणने उसे स्वीकार करना अंगीकार किया। राजाने फिर यज्ञ आरम्भ किया।

शुनः शेपको अब यज्ञके खम्भेसे कौन बांधे ? ब्राह्मणोंने इस घोर कृत्य का निषेध किया। शुनःशेपके पिताने कहा-यदि मुझे सौ मुहरें मिलें तो मैं बांध दूंगा। राजाने सौ मुहरें गिन दी। उसके दुष्ट पिताने शुनःशेप बच्चेको यज्ञके स्तम्भसे बांध दिया। लेकिन फिर उसका बध कौन करे ? उसी पिताने फिर सौ मुहरें मांगी और उस कृत्यका करना अपने सिर लिया। उसने तलवार घिसकर तैयारकी। जब शुनःशेपके मारनेका समय हुआ तब उसने देवताकी स्तुति आरंभ की॥

पहले प्रजापतिकी स्तुति की, क्योंकि वह सब देवताओंमें उत्तम है। प्रजापतिने कहा-" अग्निकी स्तुति कर, क्योंकि सब देवताओंमें अग्नि मनुष्यके बहुत निकटवर्ती है"। उसने अग्निकी स्तुति की। अग्निने कहा "सब जन्मधारी वस्तुओंके देव सविता हैं, इसलिये सविताको स्तुति करो"। उसने सविताकी स्तुति की। सविताने कहा-"वास्तवमें यह वरुणका बलिदान है, इसलिये वरुणकी स्तुति कर"। उसने फिर वरुणकी स्तुतिकी। वरुण बोले ' अग्नि देवताओंका मुख है—अग्नि द्वारा ही सब देवोंको आहुति पहुंचती है, इसलिये अग्निकी स्तुति कर"। उसने अग्निकी फिर स्तुति की। अग्निने फिर विश्वेदेवा—अर्थात् सब देवताओंकी स्तुति करवाई। विश्वे देवताओंने सब देवोंके राजा इन्द्रकी स्तुति करवाई। इन्द्रने देवताओंके वैद्य सर्व-

लोकोपकारी दोनों अश्विनोंकी स्तुति करवाई। अश्विनोंने उषा (प्रभातकालकी देवी) की स्तुति करवाई। तुरन्त ही शुनःशेपके बन्धन छूट गये और हरिश्चन्द्र राजाका जलोदर-रोग भी नष्ट हो गया। सदयहृदय विश्वामित्रने शुनःशेपको अपना पुत्र मानकर अपने सब यज्ञोंमें उसे श्रेष्ठ पदवी दी। अजीगर्तने शुनःशेपको अपने घर आनेका अनुरोध किया. किन्तु उस दुष्ट पिताका उचित तिरस्कार कर उसने कहा—"पिता जी! अधमसे अधम मनुष्य जो न करे ऐसा काम तुमने किया! तुम्हारे घर मैं नहीं जाऊंगा"।

बालको! यह कथा पढ़कर तुम्हें घृणा हुई होगी। बात घृणाके योग्य ही है। मनुष्यका बलिदान देना कैसा घोर कृत्य है। इस कथामें भी इसे 'अमानुष'—मनुष्यको उचित नहीं ऐसा-कृत्य कहा है। वेदकालमें ऋषि लोग कुछ ऐसे कृत्य न करते थे। प्रथम तो उनके यज्ञ सारे और अधिकांशमें अन्न घी दूध और सोमरसके होते थे, किन्तु अपने ग्रन्थोंमें उन्होंने बहुत ही पुरातन कालकी कितनी ही बातोंका उल्लेख किया है, जिन्हें देखते हुये मालूम होता है कि बहुत प्राचीन समयमें मनुष्यका बलिदान किया जाता होगा, परन्तु उसके पश्चात् पशुओंका। जिस समयकी पुस्तकमें से यह कथा तुमसे कही गयी है उस समयमें तो धान्यादिकके यज्ञ भी होने लगे थे। किन्तु गङ्गा यमुनाके प्रदेशमें बसे हुये आर्य लोगोंने कई बार बड़े बड़े यज्ञ किये और इनमें पशुओंका

बलिदान किया। यह बात तो सच है किन्तु हम कल यह भी सिद्ध करेंगे कि ऋषियोंको इस प्रकारके धर्मसे सन्तोष नहीं हुआ, और इस कारण उन्होंने ज्ञान-भक्ति पूर्ण धर्मका उपदेश करना प्रारम्भ किया॥

बलिदान = होम करना	तिरस्कार = अपमान
सदयहृदय = दयावान	पुरातन = प्राचीन

(५)

जनक राजाकी सभा।

पूर्व कालमें मिथिलामें जनक नामके एक महाज्ञानी राजा थे। वे सिंहासन पर बैठ उत्तम रीतिसे राजकाज करते थे। उनके ज्ञानकी कीर्त्ति ऐसी फैली हुई थी कि दूर दूर देशोंके ब्राह्मण भी उनके पास ज्ञान सीखने आते थे। उस समय राजाओंके यहां बड़े बड़े यज्ञ हुआ करते थे जिनमें विद्वान लोग मिलकर आपसमें प्रश्न पूंछ कर परमेश्वर विषयक चर्चा चलाते थे। जनक राजाने भी एक ऐसा यज्ञ किया और ब्राह्मणोंको बहुत दक्षिणा दी। इस यज्ञ में ठेठ कुरुपाञ्चाल देशतक के ब्राह्मण एकत्र हुये थे। जनकराजाको यह जाननेकी इच्छा हुई कि इन ब्राह्मणोंमें सबसे श्रेष्ठ विद्वान कौन है? अतएव उसने एक हजार गायें एक बाड़ेमें भर और उनमेंसे हरेकके सींगमें मुहरें बांध

कर उन ब्राह्मणोंसे कहा, "महाराज! तुम्हारे मध्यमें जो ब्रह्मिष्ठ (परमेश्वरके ज्ञानमें सबसे श्रेष्ठ) हो वह इन गायोंको ले जाय"। किसी ब्राह्मणकी यह करनेकी हिम्मत न हुई। केवल याज्ञवल्क्यने अपने शिष्यसे कहा, "अरे सोमश्रवा! इन गायोंको हाँक ले जाओ"। ब्राह्मण याज्ञवल्क्य पर कुपित होकर बोले "अरे याज्ञवल्क्य! क्या तू ब्रह्मको सबसे अधिक जाननेवाला है?" जनकराजाके यज्ञमें अश्वल नामक ब्राह्मण होता था, उसने आकर पूँछा, "याज्ञवल्क्य! क्या तुम ब्रह्मको सबसे अधिक जानते हो?" याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया "ब्रह्मको कौन जान सकता है? उसे जानने वाला जो पुरुष होगा उसे तो हम नमस्कार करते हैं, हमें तो केवल ये गायें चाहियें। अश्वलसे लेकर यज्ञमें एकत्र सभी ब्राह्मणोंने याज्ञवल्क्यसे लगातार प्रश्न पूंछे और याज्ञ वल्क्यने उनके उत्तर दिये। इन प्रश्न करने वालोंमें वाच-क्नवी नामकी गर्गगोत्रकी (गार्गी) एक स्त्री भी थी। इस बातसे यह ज्ञात होता है कि स्त्रियां भी परमेश्वरसंबन्धी कठिन प्रश्नोंकी चर्चामें भाग लिया करतीं थीं। इस गार्गी वाचक्नवीने याज्ञवल्क्यसे कहा "याज्ञवल्क्य! मैं तुमसे दो प्रश्न पूछती हूं और यदि तुम उनका उत्तर देसके तो निःस-न्देह यहां पर एक भी ऐसा ब्राह्मण नहीं कि जो तुम्हें जीत सकेगा।" एक प्रश्न यह है कि जो इस गगनके पार और इस पृथ्वीके नीचे रहता है, जिसके बीचमे यह गगन और

पृथ्वी लटके रहते हैं, जो भूत भविष्य और वर्तमान तीनों कालोंमें रहता है, वह किस वस्तुमें ओतप्रोत है ? याज्ञवल्क्यनें उत्तर दिया—"आकाशमें" । इससे बाहर यह दृश्यमान सारा जगत् आकाशमें ओतप्रोत है यह कथन बिल्कुल ठीक है । गार्गीके एक प्रश्नका इस बातसे यथार्थ उत्तर मिल गया । तत्पश्चात् गार्गीने याज्ञवल्क्यसे नमस्कार कर कहा—"ऋषिजी ! अब मैं दूसरा प्रश्न पूछती हूं जिसे सावधान होकर सुनिये ।"

फिर गार्गीने दूसरा प्रश्न पूछा कि "अच्छा ! तो आकाश किसमें ओतप्रोत है ? " याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया—" अक्षर में " । अक्षर—अर्थात् जिसका कभी नाश नहीं होता-ऐसा जो ब्रह्म, परमेश्वर उसमें यह आकाश ओतप्रोत है । हे गार्गी ! यह अक्षर न स्थूल, न अणु, न ह्रस्व, न दीर्घ है । उसके आँख नहीं, वाणी नहीं, मन नहीं, कुछ उसके अन्दर नहीं और न कुछ बाहर । उस अक्षरकी आज्ञामें ये सूय चन्द्रमा अपने २ स्थानोंमें स्थित रहते हैं--उसीकी आज्ञामें गगन और पृथ्वी दोनों बँधे रहते हैं । कितनी ही नदियां इस बरफसे ढ़ंके हुये पर्वतसे निकल कर पूर्वकी ओर बहती हैं, कितनी ही पश्चिमकी तरफ बहती हैं, सब उसीकी आज्ञानुसार बहती हैं । उसके सिवाय कोई देखनेवाला नहीं, कोई सुननेवाला नहीं, कोई विचार करनेवाला नहीं, कोई जाननेवाला नहीं, उस अक्षरमें यह आकाश ओतप्रोत है । उसे जिसने जान लिया

वह 'ब्राह्मण' है, और जो नहीं जानता वह 'कृपण'-दयाके योग्य-अज्ञानी है।

इस प्रकार सब देवताओंके स्थानमें केवल एक अक्षर, अविनाशी परमेश्वरकी चर्चा सुन शाकल्य नामका एक ब्राह्मण याज्ञवल्क्यसे पूँछने लगा-"याज्ञवल्क्य! कितने देवता हैं।" याज्ञवल्क्यने यही प्रतिपादन किया कि अन्तमें सब देवताओं-का समावेश एक परमात्मामें ही होता है, और यद्यपि उनके नाम जुदे २ हैं तथापि वे परमात्माके ही भिन्न २ रूप हैं।

इसके पश्चात् याज्ञवल्क्य बहुतबार जनकराजाके पास आने लगे। जो परमज्ञानी राजाको भी ज्ञान देसके ऐसे उस समयमें वे एकही ऋषि थे। इसलिये जब कभी वे आते थे तभी राजा राज्यासनसे उठ, उनके समक्ष बैठते और परलोक परमात्मा आदि विषयपर चर्चा चलाते थे।

होता = यज्ञमें देवताओंको बुलाने वाला। गगन = आकाश
समावेश = समाना। ओतप्रोत = सिला हुआ, गुँथा हुआ
अणु = बहुत छोटा। प्रतिपादन = निरूपण

---

(६)

गौतमबुद्ध और ब्राह्मण।

ऋग्वेदसंहितासे उपनिषद् पर्यन्त कालमें ब्राह्मण और क्षत्रियोंने परमेश्वरके विषयमें और उसे प्राप्त कर लेनेके मार्ग

के संबन्धमें विशेष रूपसे बहुत विचार किया, और आपसके वादविवादसे इस विषयमें जितना ज्ञान हो सकता था उतना उन्होंने उपलब्ध करनेका प्रयत्न किया। वादविवादसे बहुत ज्ञान बढ़ता है, और मनमें यह सन्तोष होजाता है कि अमुक विषयमें कुछ विचारनेकी बात बच नहीं रही। किन्तु कुछ काल व्यतीत होने पर यह वादविवाद केवल शब्दोंका युद्ध मात्र हो गया, और ऋषियोंके बतलाये हुये मार्ग आँख मीँच कर चलनेकी रूढ़ियां बन गये, अर्थात् पूर्वजोंके उपदेशके मर्मको न समझ लोग सिर्फ लकीरके फकीर हो गये। इस नये युगमें जगत्के जगाने वाले दो बड़े उपदेशक जन्मे—एक महावीरस्वामी और दूसरे गौतमबुद्ध। दोनोंके सिद्धान्तोंके विषयमें कुछ आगे कहा जायगा। इस स्थानमें तो केवल मैं तुम्हें गौतमबुद्ध और ब्राह्मणोंकी एक कथा मात्र सुनाउंगा जिससे वह समय कैसा था इस बातका तुम्हें परिचय होगा।

पहले किसी नगरमें वसिष्ठ और भरद्वाज ऋषिके कुलके दो ब्राह्मण रहते थे। उन दोनोंमें ब्रह्म और उसकी प्राप्तिके विषयमें विवाद चला। एक कहता था कि फलाने आचार्य का कहना ठीक है और दूसरा कहता था कि फलाने आचार्य का कथन ठीक है। उससे कुछ निर्णय न हो सका, इसलिये दोनोंने सोचा कि "चलो, हम बुद्धभगवानके पास चलें और उनसे पूंछें। कहते हैं कि उनके सदृश ज्ञानी और साधु महात्मा दूसरा कोई नहीं। अतः वे हमें ठीक बात समझायेंगे"

दोनों गौतमबुद्धके पास गये और प्रणाम कर कहा—'महाराज! परमेश्वर और उसकी प्राप्तिके विषयमें ब्राह्मणों में जुदी २ तरहके मत प्रचलित हैं, कोई कुछ कहता है, तो कोई कुछ कहता है। अतएव उनमेंसे किसका कथन ठीक होगा यह हमें समझ नहीं पड़ता। इसलिये क्या ठीक हैं यह हमें बतलाइये ?

गौतमबुद्ध—भाइयो! उनमेंसे किसीने तो परमेश्वर देखाही होगा ?

वसिष्ठ—नहीं, एसातो मालूम नहीं होता।

बुद्ध—उनके गुरुओंने कदाचित् देखा होगा ?

वसिष्ठ—उनके गुरुओंने देखा हो यह भी हमें प्रतीत नहीं होता।

बुद्ध—उनके गुरुओंके गुरुने कदाचित् देखा हो ?

वसिष्ठ—उन्होंने भी देखा हो ऐसा हमें नहीं मालूम होता।

बुद्ध—तब तो तीन वेदके ज्ञाता ब्राह्मण भी, जिस वस्तु को उन्होंने कभी देखा नहीं, जाना नहीं, उसकी बातें करते और उसका मार्ग बतलाते हुये देखनेमें आते हैं।

वसिष्ठ—ऐसा ही है।

बुद्ध—यह तो अब अन्धपरम्परा हुई। न आगेका मनुष्य देख सकता है, न बीचका देख सकता है न पिछला ही देख सकता है। तीनों वेदोंमें निपुण ब्राह्मणोंकी वाणी भी केवल शब्दोंका शुष्क आडम्बर मात्र है। वसिष्ठ! एक मनुष्य

चौराहेके मैदानमें बैठ कर नसैनी बनाना है, और उससे यह पूछा जाता है कि नसैनीसे वह किस मकान पर चढ़ेगा तो वह उत्तर देता है कि उस मकानको तो मैं जानताही नहीं! वह नसैनी कैसी, और कितनी बड़ी बनानी चाहिये इत्यादि क्या वह मनुष्य जान सकता है? अब मैं एक दूसरा दृष्टान्त देता हूं। देखो यह अचिरा नामकी नदी दोनों किनारोंके मध्यमें प्रवाहसे बहती है, और सामने वाले किनारे पर जिसे काम है वह मनुष्य यदि इस किनारे पर खड़ा खड़ा चिल्लाये कि 'ओ सामने वाले किनारे! इधर आओ, ओ सामने वाले किनारे! समीप आओ'. तो इस प्रकार हजार बार पुकारने पर भी क्या सामनेका किनारा समीप आ सकता है वा उस किनारे पर पहुंचा जा सकता है? उस किनारे पर पहुंचनेके लिये तो उसे नावमें बैठना चाहिये और पतवार लगाकर उसे उस ओर चलना चाहिये। इसी प्रकार यदि तीन वेदोंके विद्वान ब्राह्मण भी सच्चे ब्राह्मणपनके गुण छोड़ आलसी और मूर्ख होकर कहा करें कि 'हे इन्द्र! हम तुम्हें बुलाते हैं', 'हे वरुण! हम तुम्हें बुलाते हैं', तो इससे क्या लाभ है? फिर कल्पना करो कि एक मनुष्य यह जानता है कि उस किनारे पर किस भांति जाना चाहिये, लेकिन वह इस किनारे पर इतना रीझा हुआ है, अथवा उसकी विचारशक्ति मायाके जालमें ऐसी जकड़ी हुई है कि वह कुछ चेष्टा नहीं कर सकता, तो अब क्या वह मनुष्य सामनेके किनारे पर जा सकता है? नहीं, कदापि नहीं।

इसी प्रकार जो मनुष्य यह मेरा मित्र और यह मेरा शत्रु-यह अपना और यह पराया—इस भांतिके अज्ञानकी चद्दर ओढ़ कर सोया हुआ है, और जो इस दुनियाके राग रंग पैसे टके स्त्री बच्चे आदि प्रलोभनोंमें फंस रहा है वह सच्ची वस्तु तक क्या पहुंच सकता है?

दूसरा गुण हो वा न हो, लेकिन जिसमें 'शील' और 'प्रज्ञा' अर्थात् सदाचार और चतुराई (केवल विद्या वा बुद्धि नहीं, किन्तु परिपक्व ज्ञान सहित विवेक) है वही 'ब्राह्मण' है।

कल्पना करो = मानो   प्रलोभन = लुभाने वाली वस्तुएं।

(७)

सूत पौराणिक।

गौतमबुद्ध और महावीर स्वामीने सारे देशमें फिरकर सब लोगोंके अज्ञानके जालोंको छिन्न भिन्न कर दिया। उस समय ब्राह्मण भी शुष्क वादविवाद छोड़, यज्ञयागादिककी उपेक्षा कर देशके धर्मको सुधारनेके लिये कटिबद्ध हो गये। प्राचीन धर्म-मेंसे जितना अंश आवश्यक लगा उतना प्रचलित रखनेके लिये उन्होंने 'स्मृतियां' (प्राचीन वेदके कालके धर्ममेंसे जो याद रहा उसकी पुस्तकें) रचीं। उनमें समयानुकुल जो नयी बात ग्रहण करने योग्य वा सुधारने योग्य लगी उन्होंने उसे ग्रहण

किया। प्राचीन इतिहास और कथायें उपयोगमें लेकर उनके द्वारा लोकमें धर्मका उपदेश उन्होंने आरम्भ किया।

प्राचीन कालमें ब्राह्मण और क्षत्रियोंसे भिन्न लोगोंनेभी धर्मके उपदेश करनेमें जो भाग लिया था उसे उन्होंने खोज निकाला और सब वर्णोंके लोगोंके लिये नये और समयोपयोगी ग्रन्थ उन्होंने रचे। उन इतिहास और आख्यानोंके ग्रन्थोंमें वाल्मीकि-रचित रामायण और व्यास कृत महाभारत और अठारह पुराण मुख्य हैं। जब 'द्विज' अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य, इनसे भिन्न शूद्रवर्गके लोगोंको वेद पढ़ाया न जाता था, तब भी इन लोगोंको इतिहास और पुराण सुननेका अधिकार था। वे इन पुस्तकों द्वारा ही वेद का ज्ञान प्राप्त करते थे।

ऐसा कहा जाता है कि व्यासजीने इतिहास (महाभारत) पुराण और धर्मशास्त्र लोमहर्षण नामक सूतजातिके एक शिष्य को सुनाये थे। वह सूत इस विषयमें ऐसा प्रवीण होगया कि बड़े २ ऋषिलोग भी उसके समक्ष प्राचीन कथा और धर्मका उपदेश सुनने बैठते थे। एक समय नैमिषारण्य नामक बनमें शौनकादिक ऋषियोंने एक बड़ी अवधिका यज्ञ प्रारम्भ किया। यज्ञके साथ धर्म-चर्चा करनेका रिवाज पुराना था, तदनुसार यज्ञ-कार्यके बीच बीचमें धर्म संबन्धी कथावार्ता तथा उपदेश सुननेके लिये उन्होंने सूतजीसे प्रार्थनाकी। सूतजी उच्च आसन पर बिठाये गये और सारा मुनिमण्डल नम्रतासे सामने

बैठ कथा सुनना ही था कि इतनेमें एक बार कृष्णके भाई बलदेवजी फिरते २ नैमिषारण्य क्षेत्रमें आ पहुंचे। उन्हें देख सब ऋषि खड़े हुये और उनका सत्कार किया। सूतजी इस समय आचार्यके स्थान पर बैठे थे, इसलिये वे न उठे। इस पर बलदेवजी बहुत कुपित हुये। एक अधम जातिका मनुष्य ब्राह्मणोंसे ऊँचे आसन पर बैठकर उन्हें उपदेश करने की धृष्टता करता है इसलिये इसे मारना चाहिये यह कह कर उसपर तुरन्त एक दूब लेकर उन्होंने डाल दी। बलदेवजीका अस्त्र कभी खाली न जाता था। इस कारण एक दूर्वासे ही सूतजीकी मृत्यु होगयी। ऋषियोंमें हाहाकार मच गया, और सबने बलदेवजीसे कहा—"ये सूतजी महर्षि व्यासजीसे इतिहास, पुराण और धर्म-शास्त्र सीखे थे, और इनसे उन्हें सुननेके लिये हमने इन्हें अपना आचार्य बनाया इनका आपने अपमान और बध किया यह आपने बड़ा पाप किया, इन्हें मारकर आपने हमें महाकष्टमें डाल दिया।" यह सुन बलदेजीवको बहुत पश्चात्ताप हुआ और उस सूतके स्थान पर उसके पुत्रको बिठाकर काम चलानेकी ऋषियोंसे उन्होंने प्रार्थना की तथा उनसे अपने पापका प्रायश्चित्त पूछा। ऋषियोंने "एक वर्ष इस भरतखंडके सब तीर्थ घूम आओ" यह आज्ञा की। बलदेवजी तदनुसार तीर्थ-यात्रा कर फिर नैमिषारण्य आये। ऋषियोंने उनसे यज्ञ कराया। बलदेवजीने भी उनसे परमेश्वर संबन्धी कितनी ही ज्ञानकी बात कीं।

इस प्रकार उस समयमें जुदे जुदे वर्णके लोग एक दूसरे को उपदेश करते थे ॥

(८)

शंकराचार्य और मण्डनमिश्र !

भगवान गौतमबुद्धने निम्नलिखित उपदेशका जगतमें प्रचार किया था—यह संसार क्षणभंगुर और मिथ्या है, परमेश्वरका भजन वा यज्ञ-यागादिक करना व्यर्थ है, किन्तु हमारे हृदयमें सांसारिक वासनाओंकी जड़ जम रही है उसका समूल नाश होना चाहिये। अर्थात् जैसे दीपक बुझ जाता है वैसे अपनी इस अहंरूप आत्माका निःशेष होना—इसका ही नाम 'निर्वाण' है, और यही उत्तम स्थिति है। निर्वाणका अर्थ तृष्णा और अहंकारका नाश है। फिर परमेश्वरको किसीने देखा नहीं, इसलिए इस जगत्‌को किसने उत्पन्न किया होगा इस प्रकारका तर्क-वितर्क भी निरर्थक है। बुद्धदेवके इस उपदेशसे हजारों स्त्री पुरुष संसार छोड़ भिक्षु और भिक्षुणी बन गये, वेदधर्मकी क्रियाओं परसे लोककी श्रद्धा विचलित होने लगी। उस समय ब्राह्मणोंने पुराने शास्त्रोंको नवीन रूप देकर, और लोगोंमें जिससे धार्मिक भाव बढ़े उस प्रकारकी परमेश्वरकी भक्तिके उपदेश चारों ओर फैलाकर वेदधर्म फिर जागृत किया। फिर कुछ समय

बीतने पर साधारण लोग कर्मकाण्डमें फंस गये, और एक अद्वितीय परमात्माके ज्ञानकी उपेक्षा कर अनेक देवताओंकी उपासना करने लगे। किन्तु परमेश्वर है, वह एक है और उसका ज्ञान ही मुक्तिका सच्चा साधन है, इस पुराने सिद्धान्तके पुनरुज्जीवन करने वाले महात्माकी आवश्यकता थी। ऐसे महात्माने दक्षिणके केरलदेशमें मलाबारके किनारे आठवें शतकके लगभग जन्म लिया।

बाल्यावस्थासे ही इनका मन संसार छोड़कर परमात्मा का ज्ञान प्राप्त करने और उस ज्ञानका सर्वत्र उपदेश करनेकी ओर था। किन्तु वे अपनी प्रेमाकुलित विधवा माताके निमित्त कुछ काल तक जगत्के व्यवहारमें लगे रहे। यह किंवदन्ती है कि एक समय वे नदी पर नहाने गये और वहां पानीमें मगरने उनका पैर पकड़ लिया, यह देख उनकी माता घबड़ा कर चिल्ला उठीं, तब शंकराचार्य्यने कहा—"माता जी! यदि तुम मुझे संन्यास लेनेकी आज्ञा दो तो यह मगर मेरा पैर छोड़ देगा। इस बातका तात्पर्य यह है कि इस संसाररूपी नदीमें हमें विषयरूप मगर पकड़े हुए हैं जिनके मुखमें से छूटनेके लिये वैराग्य और संन्यास आवश्यक हैं। शंकराचार्यने सन्यास तो लिया किन्तु उनके हृदयमें दया थी इसलिये अपनी प्रेमाकुलित माताके स्मरण करनेपर उनके पास आना उन्होंने स्वीकृत किया। इस प्रतिज्ञानुसार, अपनी माताके मरणके समय जब उनके बन्धु-बान्धव

द्वेषसे उनका अग्निदाह भी करनेके लिये न आये तब शंकराचार्यने, स्वयं संन्यासी होनेके कारण क्रिया करनेका निषेध होते हुए भी, मातृ-भक्तिसे अग्निदाह किया।

इस समयमें मण्डनमिश्र नामक वैदिक धर्मके एक बड़े कर्म मार्गी विद्वान् थे। उनके पाण्डित्यकी कीर्ति चारों ओर छा रही थी। इनके परास्त किये बिना कर्ममार्गके स्थानमें ज्ञानमार्ग चलाना असम्भव था। इस कारण शंकराचार्य फिरते फिरते मण्डनमिश्रके गाँवमें आये। गाँवके बाहर पनिहारियां पानी भर रहीं थीं, उनसे उन्होंने पूछा—"माइयो! इस गाँवमें मण्डनमिश्रका घर कहां है यह बतलाओ?" पनहारियोंने कहा—"महाराज! सीधे चले जाओ और जिस घरके आँगनमें पिंजरोंमें तोते और मैंना वेद और ईश्वर संबंधी विवाद करते हों वही मण्डनमिश्रका घर है"। मण्डनमिश्रके यहां सैंकड़ों विद्यार्थी इस विषयकी रात दिन चर्चा करते थे इस कारण उनके पाले हुए पक्षियों को भी इसका अभ्यास हो गया था। इस पतेसे शंकर मण्डनमिश्रके घर पहुंचे और उस कर्ममार्गके विद्वानको ज्ञानमार्गका उपदेश करना आरम्भ किया। इस विषयमें इन दोनों महाविद्वानोंका घोर वादानुवाद चला। शास्त्रार्थमें कौन जीतेगा यह कौन कह सकता था?

मण्डनमिश्रकी स्त्री, जो अपनी विद्वत्ताके कारण सरस्वतीका अवतार मानी जाती थीं, स्वयं मध्यस्थ बनायी

गयीं, और यदि शंकरकी विजय हो तो मण्डनमिश्र संन्यास ले यह निश्चय हुआ। वादविवादमें जब शंकरको विजय प्रतीत होने लगी तब सरस्वती बड़े संकटमें आ पड़ी। एक ओर शंकराचार्यका पक्ष सत्य है यही उसके हृदयसे अन्तर्ध्वनि होती थी, दूसरी ओर अपने पतिको अपने मुखसे परास्त कहनेका साहस कैसे हो सकता था, इस धर्म-संकट में सरस्वतीने दोनोंके कण्ठमें जयमाल पहनायी, और यह कहा कि जिसके कंठकी माला सूख जायगी वह शास्त्रार्थमें पराजित हुआ समझा जायगा। मण्डनमिश्रकी माला सूख गई, वे हार गये और संन्यासी हुए। शंकराचार्यके शिष्यों में संन्यास लेनेके पश्चात् उनका नाम सुरेश्वराचार्य हुआ।

शंकरने हिन्दुस्तानमें स्थान स्थान पर फिरकर एक परमात्माके ज्ञानका उपदेश किया और उस उपदेशकी रक्षाके लिये चारों दिशाओंमें चार गद्दियां स्थापित कीं। बत्तीस वर्षकी अवस्थामें ये महात्मा विदेह हुए कहे जाते हैं।

क्षणभंगुर=नाशवान। निःशेष=नाश, शेष न रहना

परास्त=पराजित, हारना। किंवदन्ती=लोग कहते हैं

(६)

रामानन्द और उनके शिष्य।

शङ्कराचार्यके पश्चात् लगभग ढाई सौ वर्ष बाद रामानुज

नामक एक आचार्य हुए। उन्होंने ज्ञानके साथ कर्म और भक्ति का संबन्ध घनिष्ठ और आवश्यक बतलाया। उनकी शिष्य परम्परामें डेढ सौ वर्ष व्यतीत होने पर रामानन्द हुए। उन्हें रामानुजाचार्यकी सम्प्रदायमें खानपान और जातिपाँतके जो बहुत भेद हो गये थे, वे उचित न लगे। अतएव उन्होंने काशी जाकर एक जुदा मठ स्थापित किया। ये रामके भक्त थे, और भक्ति और ज्ञान येही परमेश्वरकी प्राप्तिके सच्चे साधन हैं यह इनका उपदेश था। हिन्दुस्तानमें धर्मका उपदेश संस्कृत के बदले देशकी प्रचलित भाषामें—अर्थात् अशिक्षित लोग भी समझ सकें उस भाषामें—भली भांति होने लगा। चारों ओर भक्त और साधुजन उत्पन हुए। एक बार रामानन्दजी दक्षिणकी यात्रामें जाते थे, वहां मार्गमें एक गाँवके पास उन्होंने विश्राम किया। । गाँवमेंसे बहुतसे स्त्री पुरुष उनकी कीर्ति सुन उनके दर्शन और सत्कार करने आये। उनमें एक स्त्री थी। उसकी सेवासे प्रसन्न हो रामानन्दने उसे आशीर्वाद दिया कि—"पुत्रवती हो", पर उस स्त्रीका पति तो काशी जाकर उनका स्वय ही शिष्य होकर संन्यासी हो गया था, इस बातका जब उन्हें परिचय मिला तभी वे काशी लौट आये और अपने शिष्य संन्यासीसे पूछा "संन्यासी होने के पहले क्या तुमने अपनी स्त्रीसे आज्ञा ली थी?" उसने निषेध किया। रामानन्दने तुरन्त उसे गृहस्थाश्रममें प्रवेश करने और घरमें रहकर परमेश्वरकी भक्ति करनेका उपदेश

किया। उस शिष्यने गुरुकी आज्ञानुसार घरमें पुनः प्रवेश किया। उसके पुत्र एक बड़े मराठी ग्रन्थकर्ता और साधु हुए।

यह कहा जाता है कि रामानन्द सदा सूर्योदयके पहले गङ्गास्नानके लिये जाया करते थे। एक बार उनके मार्गमें पड़े हुए एक मनुष्य पर उनका पैर पड़ गया। इस घटनासे दुःखित होनेके कारण उनके मुखसे सहसा "राम! राम!" ये शब्द निकले। उस पददलित मनुष्यके लिये यह उद्गार रामनामका मन्त्र हो गया, और रामानन्द उसके गुरु हुए। यह मनुष्य हिन्दुस्तानका प्रसिद्ध ज्ञानी साधु कबीर था जो जातिका जुलाहा था और जिसे हिन्दु-मुसलमानमें किसी भी तरहका भेदभाव न था।

रामानन्दकी ही शिष्यपरम्परामें मीराबाई, तुलसीदास आदि हुए। तुलसीदास कृत रामायण उत्तर हिन्दुस्तानमें घर २ प्रेमसे गाई जाती है और उस प्रान्तके लोगोंका यह वेदके सदृश आदरणीय धर्मशास्त्र है, यह बात बिलकुल यथार्थ है। यह कहते हैं कि—

भाषा शाखा है सही संस्कृत सोही मूल।
मूल रहत है धूलमें शाखामें फलफूल॥

पददलित = पैरसे पिसा हुआ उद्गार = अचानक बोले हुए शब्द

(१०)

ईश्वर सर्वशक्तिमान है ।

गुरुजी विद्यार्थियोंकोसैर करानेके लिये गाँव बाहर ले जाते है। यह साँवनका महीना है। रातको मेह बरसनेसे जङ्गलकी झाड़ियां उदय होते हुये सूर्यके प्रकाशमें हरीभरी नज़र आती हैं। आसपासके खेतोंमें बाजरेके डंठल निकल आये हैं। चारों ओर सृष्टि-सौन्दर्य और प्रभुकी महिमाके सिवा और कुछ नहीं दीखता। ऐसे ही समयमें और ऐसे ही स्थलमें बालकों को धर्मका शिक्षण करना चाहिये। गुरुजी ऐसे प्रसङ्ग पर कभी न चूक सकते थे। खेत की बाड़के पास ऊंची भूमि थी जहां सब खड़े होगये। एक विद्यार्थी चारों ओर नज़र फेरकर स्वाभाविक रीतिसे बोल उठा "अहा यह सारा कैसा सुन्दर दृश्य है!" सबके हृदय आनन्दसे उछलने लगे, सबने हृदयसे ईश्वरको नमस्कार किया। गुरुजीने धर्म-शिक्षणका काम आरम्भ किया॥

गुरुजी—बालको! आजसे हम हिन्दूधर्मके तत्वोंके विषयमें बात चीत शुरु करेंगे और इसमें हमारा पहला विषय ईश्वर होगा। कारण कि ईश्वर पर और उस ईश्वरको हम कैसा मानते हैं इसपर ही हमारे धर्मका और उसके स्वरूपका आधार है॥

उपनिषद्में ईश्वरकी व्याख्या इस प्रकारसे की गई है:—

"जिसमेंसे ये समस्त पदार्थ उत्पन्न होते हैं, जिसके द्वारा उत्पन्न होकर ये जीवित रहते हैं, जिसके प्रति ये जाते हैं, जिसमें इनका प्रवेश होता है वही ईश्वर है" ।

ये चन्द्र, सूर्य, तारागण उसके तेज ही से प्रकाशमान हैं । हरेक पदार्थ अपने २ स्थानमें रहकर अपना कार्य्य कररहा है- यह रचना, यह प्रताप परमेश्वरका ही है । परन्तु इस विश्वके तरह तरहके पदार्थोंमें वह भाँति भाँतिके रूपसे दिखाई देता है । देखो इस पृथ्वीमें हम बीज बोते हैं, बरसातका पानी उसे सींचता है, सूरज गरमी देता है तत्पश्चात् उसपर ऋतु ओंकी वायु चलती है । फिर बीजमें अङ्कुर उत्पन्न होता है, अङ्कुरमें डंठल उगते हैं, यह सब कौन करता है ?

हरिलाल—ईश्वर करता है ।

मनिलाल—गुरूजी महाराज ! क्या यह नहीं कह सकते कि इस पृथ्वीको सूर्य, पवन आदि हराभरा करते हैं ?

गुरुजी—ऐसा कह सकते हैं किन्तु इन सब पदार्थोंमें जो शक्ति है वह ईश्वरकी है । परमात्माके बिना ये पदार्थ कुछ भी नहीं कर सकते । इन पदार्थोंको और इनमें बसने वाली ईश्वरकी शक्तियोंको 'देव' कहा करते थे । ईश्वर तो सब देवताओंका देवता है, सब शक्तियोंकी शक्ति है इस बात पर मैं एक छोटीसी कथा कह कर सुनाता हूं । पूर्व समयमें दैत्य और देवोंका युद्ध हुआ, उसमें अपने परमाराध्य

देव ईश्वरके बल भरोसे देवता लोग जीते। वास्तवमें यह ईश्वरकी ही जीत थी किन्तु देवता लोग तुच्छ अभिमान से फूल गये और यह मानने लगे कि यह हमारी ही जीत है—हमारी ही महिमा है। ईश्वर इसे जान गए और एक यक्षका रूप धारण कर सामने आ खड़े हुए। देवता लोग उन्हें पहचाने नहीं। वे परस्पर विचार करने लगे कि यह कौन होगा। किसीको कुछ न सूझ पड़ा। फिर उन्होंने अपने में से एक अग्निदेवसे कहा—"अग्निदेव! तुम जाओ, तुम्हें तीनों लोक जाने हुए हैं, तुम निश्चय करो कि यह कौन है?" अग्निदेव ने कहाः— 'अच्छा'। फिर अग्निदेव उस यक्षरूपधारी ईश्वरके समीप गए। यक्षने उनसे पूछा "तुम कौन हो।"। अग्निदेवने जवाब दिया—"मैं अग्नि हूं।" यक्षने पूछा "तुझमें क्या शक्ति है?" अग्निने उत्तर दिया "मुझमें तो ऐसी शक्ति है कि मैं यह जो कुछ पृथ्वी पर नज़र आता है इस सबको जलाकर भस्म कर सकता हूं।" यक्षने उसके पास तृण रखकर कहा "इसे जलाओ"। अग्निदेव इस तिनकेपर अपने भरसक बलसे दौड़े किन्तु इतनेसे तिनके को वह जला न सके। अग्निदेव शरमा कर वहांसे लौटे और देवताओंके पास जाकर कहा "यह यक्ष कौन है इसे मैं न जान सका"। फिर देवताओंने वायुदेवसे कहा "वायुदेव! तुम जाकर निश्चय करो कि यह यक्ष कौन है?" वायुदेवने कहा "अच्छा"। वायुदेव उस यक्षके पास गये। यक्षने पूछा, "तुम कौन

हो" ? वायुदेवने जवाब दिया "मैं वायु हूं"। यक्षने पूछा 'कहो तुममें क्या शक्ति है"। वायुदेवने उत्तर दिया कि मैं पृथ्वीपर की सभी वस्तुओंको खींचकर लेजासकता हूं। यक्षने उनके पास तिनका रखकर कहा, "लो इसे खींच ले जाओ"। वायुदेव उसपर बड़े वेगसे झपटे किन्तु इतनेसे तिनकेको वह न उठा सके। वायुदेव लौटे और देवताओंसे जाकर कहा "यह यक्ष कौन है इसे मैं न जान सका"।

फिर देवताओंने इन्द्रसे कहा, "इन्द्र महाराज ! तुम जाओ और इस यक्षका पता लगाओ।" इन्द्रने कहा, "अच्छा"। इन्द्र उस यक्षकी तरफ दौड़े, 'किन्तु वह यक्ष अन्तर्धान हो गया, और जहां वह यक्ष खड़ा था वहां एक स्त्री खड़ी हुई देख पड़ी। इसका नाम उमा था और वह बहुत रूपवती थी। इन्द्रने उससे पूंछा, "यहां जो यक्ष खड़ा था वह कौन था"। उसने कहा, "वह स्वयं ईश्वर थे, उस ईश्वरकी जयसे ही तुम्हारी जय है, उसकी महिमासे ही तुम्हारी महिमा है"। इन्द्रने ईश्वरको जान कर देवताओंसे उस बात को कह डाला।

इस प्रकार गुरुजीने बालकोंको एक प्राचीन कथा कही और पूंछा, "बालको ! इस कथामेंसे तुम क्या समझे।" बालकोंमेंसे बसन्तलालने उत्तर दिया, "ईश्वर ही सर्व शक्तिमान है, अग्नि, वायु आदि इस जगत्में जो जो बलवान पदार्थ देख पड़ते हैं वे सब ईश्वर हीकी शक्तिसे अपना २ काम करते हैं"।

गुरुजी—ठीक, कहो अब किसीको और कुछ पूछना है ?

मतिलाल—गुरुजी महाराज ! ये सब पदार्थ किसमेंसे उत्पन्न हुये होंगे ?

गुरुजी—तुम्हारा सवाल अच्छा है किन्तु उसके जवाब देनेके लिये काफी समय नहीं रहा, इस लिये इस सवालको हम कल ले सकेंगे ।

अन्तर्धान=लोप हो जाना ।

महिमा=महत्व ।

उमा=इस विश्वमें दिखाई देने वाली ईश्वरकी सुन्दर शक्ति

सृष्टि-सौन्दर्य=प्रकृतिकी सुन्दरता, कुदरतकी खूबी ।

धर्म-सिक्ष=धर्मका उपदेश ।

देव=चमकती हुई ईश्वरकी शक्ति ।

यक्ष=मनुष्य और देवताओंके बीचके दरजेके जीव ।

(११)

सारे पदार्थ ईश्वरके ही रूप हैं ।

आज एक बड़े बरगदके वृक्षके नीचे धर्मके शिक्षणके लिये कक्षा बैठी है । प्राचीन कालमें जब ऋषि लोग आश्रम बना कर रहते और सैकड़ों विद्यार्थियोंको अपने आश्रममें बसाते, पालते और विद्या पढ़ाते थे तब बहुत बार ऐसे किसी वृक्ष

के नीचे गुरु-शिष्यकी मण्डली बैठा करती थी और उनके बीचमें सवाल-जवाब चलने थे।

गुरुजी—कल मतिलालका क्या प्रश्न था ?

मतिलाल—परमेश्वरकी ही शक्तिसे यह समस्त विश्व चलता है, पर इस जगत्को परमेश्वरने किस वस्तुमेंसे पैदा किया ?

गुरुजी—अपनेमेंसे। उसे जगत्की सृष्टिके लिये बाहर कुछ भी लेनेके लिये नहीं जाना पड़ता। घर बनाने वालेको पत्थर, मिट्टी लकड़ी आदि लेने जाना पड़ता है, क्योंकि एसे कामके लिये परमेश्वरने जो साधन कर रखे हैं उनका ही केवल उपयोग वह कर सकता है। उसकी शक्ति परमेश्वर ऐसी अनन्त-अमेय नहीं कि उसे बाहरके साधनोंकी आवश्यकता न हो, किन्तु परमेश्वर तो अतुल शक्ति शाली होनेसे सब कुछ अपनेमेंसे उत्पन्न कर सक्ता है। इस प्रसङ्गके अनुसार मैं तुम्हें एक प्राचीन पुस्तकमेंसे कथा कहता हूं उसे सुनोः—

पूर्वकालमें ऐसे ही एक बरगदके नीचे उद्दालक नामक ब्राह्मण कुटी बनाकर रहता था। ब्राह्मण विद्वान था पर उसके लड़केका जी पढ़नेमें न लगता था। आठवें वर्ष उसका जनेऊ हुआ। जनेऊ होते ही तुरन्त गुरुके घर जा कर विद्या पढ़ना यह अपना पुराना रिवाज था। किन्तु यह लड़का बारह बरसका होने तक भी गुरुके घर न

गया। एक दिन पिताने खिन्न होकर श्वेतकेतु (उस बालकका नाम था) को अपने सामने बिठाकर कहा, 'भाई! अब तक हमारे कुलमें कोई भी बिना पढ़ा लिखा नहीं रहा, ब्राह्मण जातिका होनेके कारण ब्राह्मण कहा जाय ऐसा कोई भी हमारे कुलमें नहीं हुआ। तू बड़ा हुआ बारह बरसका हुआ, अब तो तू गुरुके घर जाकर विद्या प आवे तोः अच्छा हो ''। इन कोमल किन्तु प्रभावशाली शब्दोंसे उस बालकके मन पर बहुत असर हुआ और वह गुरुके पास विद्या पढ़ने परदेस गया। बारहसे चौबीस वर्ष तक गुरुके घर रहा और अनेक तरहकी विद्या उसने भली भाँति सीखी। जब वह विद्या पढ़कर घर आया तब श्वेतकेतु तो मानों पहलेका श्वेतकेतु ही न रहा। पहले वह अपढ़ और दब्बू था पर अभिमानी न था। इसके बदले अब वह विद्वान, गम्भीर किन्तु अभिमानी हो गया। पिताने देखा कि लड़का कितनी ही विद्याओंमें निपुण हो गया है, पर अभी उसे सच्चे धर्मका--ईश्वरके ज्ञानका—शिक्षण नहीं मिला। इस लिये पिताने उसे पास बिठा कर पूछा "श्वेतकेतु! तेरी बुद्धि तो बहुत ही तीक्ष्ण हो गई है, तू विद्या पढ़नेका अभिमान भी बहुत रखता है और घमण्डी भी प्रतीत होता है। देख, मैं तुझसे एक प्रश्न पूछता हूं जिसका उत्तर दे। तैने कभी अपने गुरुसे यह प्रश्न किया है कि 'गुरुजी! ऐसा कौन पदार्थ है कि जिसके एकमात्र जाननेसे सब कुछ जाना

जा सके ?" श्वेतकेतुने जवाब दिया, "पिताजी ! एकके जाननेसे यह सब कुछ किस रीतिसे जाना जा सकता है" ? पिताने कहा "देखो भाई ! मिट्टी है, इस एक मिट्टीको यदि पूर्ण रूपसे जान लें तो मिट्टीके जो जो पदार्थ होते हैं–घड़ा, दिवला, ईंट इत्यादि-उन सबको हम जान सकते हैं, कारण यह कि मिट्टीके बने हुये ये सारे पदार्थ भिन्न भिन्न नाम मात्र हैं, खरी वस्तु तो मिट्टी ही है। इसी प्रकार, भाई ! लोहा क्या वस्तु है यह यदि हम ठीक ठीक समझ लें तो लोहेके बने हुये सब पदार्थ हमारी समझमें आ जायंगे, कारण कि लोहेके भिन्न भिन्न पदार्थ तो नाम मात्र ही हैं, खरी चीज़ तो लोहा ही है।"

श्वेतकेतु—"पिता जी ! तो मेरे गुरुओंने ऐसा तो मुझे कोई भी पदार्थ नहीं बतलाया कि जिसके जाननेसे सब कुछ जाना जा सके। मुझे मालूम होता है कि उस वस्तुको वे गुरुजन स्वयं न जानते होंगे। यदि वे जानते होतेतो वे मुझसे क्यों न कहते। अतएव पिताजी आप ही मुझे बतलाओ।" पिताने कहा, "यह पदार्थ तो वह परमेश्वर ही है, जैसे मिट्टी का घड़ा, सोनेके आभूषण, लोहेकी छुरी, तलवार इत्यादि–वैसे ही ये सब पदार्थ परमेश्वरके ही बने हुये हैं। परमेश्वरकी इच्छा हुई कि 'मैं एक हूं और बहुत हो जाऊं,' और इस प्रकार इच्छा कर उसने स्वयं तेज, जल आदि रूप धारण किये—और यह सृष्टि हुई"। फिर पिताने पुत्रको परमेश्वर

सम्बन्धी विशेष ज्ञान दिया। कोरी विद्या पढ़ कर पुत्र अभिमानी हो गया था पर परमेश्वर-सम्बन्धी ज्ञानसे वह नम्र बना, और उसने सच्ची जानने योग्य वस्तुको पहचाना।

कक्षा=क्लास

अमेय=जो मापा न जा सके।

(१२)

ईश्वरकी सत्ता जगत्‌के भीतर और बाहर भी है

दूसरे दिन भी उसी झाड़के नीचे धर्म शिक्षणकी कक्षा बैठी। झाड़की छाया घनी थी, और पवन भी धीरे २ चलता था। अतः यह स्थान खुली हवामें बैठकर काम करनेके लिये अच्छा था। इसके अलावा हमारे ऋषि लोग प्राचीन कालमें ऐसे ही झाड़ोंके नीचे बैठकर परमेश्वर सम्बन्धी विचार किया करते थे यह जानकर लड़कोंको यह स्थान विशेष प्रिय लगने लगा।

बालक—गुरुजी महाराज! क्या हम आज भी कलके बरगदके पास न जायंगे?

गुरुजी—चलो, तुम्हारा मन यदि वहां जानेका है तो वैसा ही करो।

सब बड़की छायामें जा बैठे। जैसे ईश्वरमेंसे यह समस्त सृष्टि फैलती है वैसे ही बड़मेंसे छोटे २ बट वृक्ष निकले हुये थे। बड़ पर बहुतसे फल निकल रहे थे जिन्हें असंख्य पक्षी बैठे खा रहे थे और बड़के नीचे भी पवन और पक्षियोंसे गिराये हुये सैकड़ों फल विखरे हुए थे।

गुरुजी—कलकी बातोंमेंसे किसीको कुछ पूछना हो तो पूछो ?

मणिलाल—गुरुजी महाराज ! श्वेतकेतुके पिताके कथनानुसार यदि ये सब पदार्थ परमेश्वरके ही बने हुये हैं तो ये पदार्थ ही परमेश्वर हैं।

गुरुजी—नहीं, ऐसा नहीं; ये पदार्थ परमेश्वरके रूप तो हैं किन्तु ये पदार्थ परमेश्वर नहीं। जो इस पृथ्वीमें रहता है किन्तु जिसे पृथ्वी जानती नहीं पृथ्वी जिसका शरीर है, जो पृथ्वीके भीतर रहकर इसे चलाता है वही परमेश्वर है। जो जलमें रहता है, जो वायुमें रहता है, जो चन्द्र सूर्य तारे, पशु पक्षी मनुष्य इत्यादि ब्रह्माण्डमें भरपूर इन असंख्य पदार्थोंमें रहता है किन्तु ये पदार्थ जिसे जानते नहीं ये पदार्थ जिसके शरीर हैं, इन पदार्थोंके भीतर रहकर इन्हें जो चलाता है–वही परमेश्वर है।

तथापि मैंने जो मिट्टी और मिट्टीके बासनका दृष्टान्त दिया था उसे सुन कर तुम्हें जो शङ्का हुई वह उचित ही है। श्वेतकेतुको भी कदाचित् वह शङ्का हुई होगी। अतएव

उसके पिताने जैसे दूसरा दृष्टान्त देकर वह शङ्का दूरकी वैसे मुझे भी करना उचित है। बालको! वह बड़का फल ले आओ. (एक ले आया) और टुकड़े करो, टुकड़े कर देखो उसमें क्या है? (एकने उसे तोड़ा और सब इकट्ठे होकर भीतर देखने लगे, उसके अन्दर छोटे दाने देख पड़े)

बालकोंने गुरुजीसे कहा—' गुरुजी! इसमें तो छोटे छोटे दाने देख पड़ते हैं। गुरुजी बोले —"अच्छा, अब उनमेंसे एक छोटा दाना लेकर टुकड़े करो और देखो उसमें क्या नज़र आता है?" बालकोंने एक दाना लेकर तोड़ा और देखा, लेकिन वह इतना सूक्ष्म था कि कुछ भी न दिखाई दिया। फिर बालक बोले—"गुरुजी! इसके भाग करनेसे तो कुछ भी नहीं देख पड़ता।" गुरुजी बोले—"यह समझ लो कि जिसकी बाबत तुम ऐसा कहते हो कि कुछ नहीं देख पड़ता उसमें ही पूरा बड़का झाड़ समा रहा है. और इसी प्रकार इस जगत्‌के अन्दर रहता हुआ भी जो देख नहीं पड़ता उसमें ही यह जगत् समा रहा है और उसमें हीसे यह निकला है।"

हरिलाल—पहलेसे ही यदि पिताने मिट्टी और घड़ेके दृष्टान्त देनेके बदले यह बड़का दृष्टान्त दिया होता तो कितना अच्छा होता!

गुरुजी—मिट्टी और घड़ेका, सोने और सोनेके आभूषणोंका, लोहे और लोहेके शस्त्रोंके दृष्टान्त देनेका मतलब

यह है कि उन उन वस्तुओंकी बनी हुई चीजोंको चाहे जितना तोड़ो फोड़ो तो भी जिन पदार्थोंसे वे बनी हैं वे पदार्थ तो हमेशा कायम रहेंहीगे। घड़ा फूट जायगा पर मिट्टी नहीं फूटेगी; आभूषण टूट जांयगे लेकिन सोना ज्योंका त्यों रहेगा। इसी प्रकारसे यह जगत् परमेश्वरका बना हुआ है और यदि इसके टुकड़े टुकड़े भी हो जांय तो भी परमेश्वर का नाश न होगा। लेकिन यदि यह बड़ सूख जाय वा जल जाय तो इसके बीज न रहेंगे। लेकिन बड़ और बीजके दृष्टान्तमें इतनी ही कमी है कि ये बीज और बड़ अलग किये जा सकते हैं किन्तु इस प्रकार परमेश्वर और सृष्टिको एक दूसरेसे जुदा नहीं किया जा सकता।

हरिलाल—इस दृष्टान्तमें एक कमी, दूसरेमें दूसरी कमी, क्या ख़ूब!

गुरुजी—ठीक, कोई भी दृष्टान्त परमेश्वरके विषयमें पूर्णरूपसे लागू नहीं होता यह इस बातसे मालूम होता है। हम जो जो दृष्टान्त लेते हैं वे उसके स्वरूपको कुछ कुछ, जैसे तैसे समझानेके लिये काफी होते हैं।

शंका=शक। ब्रह्माण्ड=विश्व।

दृष्टान्त=मिसाल। सूक्ष्म=बारीक, अति छोटा।

(१३)

ईश्वर देखनेमें नहीं आता, पर वह अनुभवगम्य है ।

बालक—गुरुजी महाराज ! ईश्वर देख नहीं पड़ता, तो भला वह कहां रहता होगा ?

गुरुजी—इस जगत्‌के कण कणमें वह व्याप्त है। इस बातको श्वेतकेतुके पिताने श्वेतकेतुको एक अच्छे दृष्टान्त द्वारा समझाया है। पिताने कहा—"भाई, उस पानीमें एक नमक की डली डालो, और प्रातःकाल उसे मेरे पास ले आओ ।"

श्वेतकेतुने ऐसा ही किया, और दूसरे दिन सुबह नमक-के पानीका प्याला लेकर पिताके पास गया। पिताने कहा-"श्वेतकेतु ! जिस नमकको डलीको तुमने पानीमें डाला है उसे लाओ ।" श्वेतकेतुने पानीमें हाथ डालकर देखा लेकिन वह डली उसे न मिली क्योंकि वह बिल्कुल गल गई थी। इस लिये उसने कहा—"पिताजी ! वह तो नहीं है ।" पिता—"अब तुम इस पानीको उपरसे चखो और कहो कि कैसा लगता है ?" श्वेतकेतुने चखकर कहा कि यह खारा है। पिता—"बीचमेंसे आचमनो डालकर निकालो और चख कर इसका स्वाद बतलाओ ।" श्वेतकेतुने इसे भी खारा ही बताया। पिताने फिर पूछा कि नीचेसे

चखकर इसका स्वाद बतलाओ। फिर भी उसने खारा ही कहा। पिता—"उस नमकको निकाल कर मेरे पास लाओ।" श्वेतकेतु—"वह कैसे निकल सक्ता है, वह तो पानीमें नित्य घुला ही हुआ रहेगा।" पिता—"तो इसी प्रकार समझो कि परमेश्वर यहीं है तथापि तू यह देख नहीं सकता कि वह यहीं है। केवल उसके चखने हीसे, उसके रस लेने हीसे वह मालूम होता है। अर्थात् परमेश्वर आंखसे देखनेमें नहीं आता, पर उसका अनुभव हो सकता है, और इस रीतिसे वह है, यह हमें निश्चय हो जाता है।

मणिलाल—गुरुजी! इस बातमें नमकके बदले शक्कर कहा होता तो कैसा अच्छा होता!

गुरुजी—बहुत ठीक! परमेश्वर शक्कर ऐसा मीठा है, पर तुम्हीं ज़रा कहो कि शक्करकी अपेक्षा क्या नमक कुछ कम स्वादु है?"

मणिलाल गुरुजीका कहना समझ गया और निरुत्तर होकर कहने लगा—"गुरुजी! नमक बिना तो सारी रसोई फीकी लगती है। रसोईमें मिठाई बिना काम चल सकताहै"

(१४)

ईश्वर एक वा अनेक है।

गुरुजी—बालको! आज तक तुम हिन्दू धर्मके शास्त्रानुसार ईश्वरके संबन्धमें इतनी बातें जान चुके हो—

(१) इस विश्वमें सारी शक्ति केवल ईश्वर ही की है- यक्ष और देवताओंकी बात याद करो।

(२) सब कुछ उसीसे बना है, उसमेंसे ही उत्पन्न हुआ है, उसमें ही स्थित और अन्तमें उसीमें ही समा जाता है, जैसे मिट्टी और घड़ा, सोना और गहना।

(३) किन्तु जो पदार्थ दीखते हैं वे ईश्वर नहीं। वह तो इन पदार्थोंके अन्दर व्याप्त है और वह दृष्टि गोचर नहीं होता जैसे बड़के पेड़के सूक्ष्म बीज।

(४) यद्यपि इस दृष्टिसे तो वह देखा नहीं जाता, लेकिन यदि चाहें तो उस वस्तुका रसास्वादन किया जा सकता है, जैसे जलमें मिश्रित नमक वा शक्कर का।

अब कहो-ईश्वरके विषयमें और क्या जानना चाहते हो?

रमाकान्त—गुरुजी महाराज! ईश्वर एक है अथवा अनेक?

गुरुजी—ईश्वर एक है। यह सारा विश्व एक है, इसके सब पदार्थ इकट्ठे रहते हैं, एक दूसरेके साथ गुथे हुए हैं, और एक ही रचनाके अङ्ग हैं। देखो, इस सरोवरमें एक कङ्कड़ डालो, पानीकी कैसी लहरें उठती दीखती हैं! एक जगह पानी हिलता है लेकिन उस हलचलका असर सारे सरोवरमें फैल जाता है। तुमने बड़े शहरोमें एकाद कपड़े बनानेका कारखाना तो देखा ही होगा। न देखा हो तो यह नन्हीसी घड़ी ही देखो, इसमें चक्र कैसे एक दूसरेके साथ

जुड़े हुये हैं--एक फिरता है तो दूसरा फिरता है, दूसरा फिरता है तो तीसरा फिरता है। इस प्रकार इस विश्वको भी समझना चाहिये। सूर्य, चन्द्र, तारा, पृथ्वी एक दूसरेसे लाखों और करोड़ों योजन दूर हैं, तथापि ये सब एक ही घड़ीके चक्र हैं, और इस कारण इन सबका रचने वाला एक ही होना चाहिये। एक न हो तो इन सबके बीच कितनी गड़बड़ मच जाय? अभी ये सब चक्र तो फिरते हुये देख पड़ते हैं तौ भी तुम इनको एक दूसरेसे अलग कर सक्ते हो। किन्तु अपने शरीरके जो अवयव हैं उनका काम एक दूसरेसे बिल्कुल जुदा है तौ भी वे एक दूसरेसे जुदे नहीं किये जा सक्ते। सब मिलकर एक ही काम करते हैं? सभी मनुष्यके जीवनकी सेवा कर रहे हैं। वे किसके द्वारा ऐसा करते हैं? जैसे अपने शरीरके अवयव इकट्ठा रख कर चलाने वाली एक आत्मा है, वैसे ही यह विश्व और इसमें विराजमान परमात्मा है।

इस कारण हिन्दूधर्मके शास्त्रोंमें इस विश्वको परमेश्वर का शरीर बतलाया है, और परमेश्वर उसके अन्दर बसने वाला जीवन कहा गया है। उस महान पुरुषके हजारों मस्तक हैं, हजारों आंखें हैं, हजारों पैर हैं। यदि दूसरे प्रकार से यह बात कहें तो यह आकाश उसका सिर है, ये सूर्यचंद्र उसकी आंखें है, यह वायु उसका श्वासोछ्वास हैइत्यादि।

रमाकांत—तब तो परमेश्वर वड़े दैत्यके सदृश हुआ।

गुरुजी—नहीं:परमेश्वर बड़ा है लेकिन वह दैत्य ऐसा नहीं। मैंने तुमसे कुछ दिन पहले जो कुछ कहा था वह तुम भूल गये। परमेश्वरके वर्णन करनेके लिये हम ये जितने दृष्टान्त लेते हैं उतने अधूरे हैं। हमने इस विश्वको परमेश्वरका शरीर और परमेश्वरको इसमें बसनेवाला जीव बतलाया, इसका अर्थ यह कि इस अखिल विश्वमें बसने वाला परमेश्वर एक है, वह सब पदार्थोंको इकट्ठा रख, सबके अन्दर रहकर, सबका संचालन करता है। जैसे हमारे शरीरमें जीव वैसे परमेश्वर अखिल विश्वमें प्रविष्ट है।

रसास्वादन = रसका चखना मिश्रित = मिला हुआ
योजन = चार मील अवयव = अंग श्वासोच्छ्वास = साँस प्राण
सञ्चालन = चलाना प्रविष्ट = व्याप्त

(१५)

"तेतीस करोड़ देवता"

गुरूजी महाराज! आप कहते हैं कि हिन्दू धर्ममें परमेश्वर एक है तो तेतीस करोड़ देवता क्यों कहे जाते हैं?

गुरूजी—परमेश्वर एक है, किन्तु उसके प्रकाशके स्थान असंख्य हैं। इस विश्वके सूर्य, तारे और पृथ्वी आदि अगणित पदार्थोंमें उसकी अगणित शक्तियां प्रकाशमान हैं। अतएव करोड़ों देवता हैं यह कहा जाता है।

मतिराम—गुरुदेव ! विश्वके समस्त पदार्थोंमें परमात्माकी शक्तियां स्फुरित हो रही हैं इस भावकी सुन्दर कविता मुझे याद आती है:—

विमल इन्दुकी विशाल किरणें प्रकाश तेरा दिखा रही हैं ।
अनादि तेरी अनन्त माया जगतको लीला दिखा रही है ॥
तुम्हारा स्मित हो जिसे निरखना वह देख सकता है चन्द्रिकाको ।
तुम्हारे हंसनेकी धुनमे नदियां निनाद करती ही जा रही है ॥

गुरुजी—यह कैसा सुन्दर भाव है ! वस्तुतः ईश्वरका ऐश्वर्य विश्वकी इन सब वस्तुओंमें देखने में आता है । उसका प्रतिबिम्ब सभी पदार्थोंमें झलकता है । वह एक है किन्तु अनेक रूपोंसे प्रकट हो रहा है । इस बातके समझ लेनेपर हिन्दू धर्ममें "तेतीस करोड़" देवता क्यों कहे जाते हैं इस प्रश्नका उत्तर कुछ भी कठिन प्रतीत नहीं होता । ये देवता एक परमात्माके ही अनेक रूप हैं । करोड़के लिये मूल संस्कृत शब्द 'कोटि' है । कोटि शब्द वर्ग वा प्रकारके अर्थमें भी प्रयुक्त होता है । १२ आदित्य कहे जाते हैं, ११ रुद्र, ८ वसु, और देवताओंके राजा इन्द्र १, और उत्पन्न हुई वस्तुमात्रके पति, स्वामी, प्रजापति १, इस प्रकार मिलकर ३३ होते हैं । करोड़—'कोटि'—देवता इस वाक्यका यह अर्थ है कि देवताओंकी कुल संख्या ३३ है, अर्थात् वे तेतीस प्रकारके हैं ।

लड़के 'तेतीस करोड़ देवताओं' का यह अर्थ जानकर

अचम्भेमें हुए और उन्हें यह मालूम हुआ कि लोग इस विषयमें कितने अनभिज्ञ हैं। अब अपने २ मनकी शंकाओंके समाधान गुरुजीसे करानेके लिये उत्सुक हुए॥

अगणित = जो गिने न जांय। निनाद = शब्द

स्फुरित = प्रकट होना। प्रतिबिम्ब = छाया

स्मित = मुसकान। अनभिज्ञ = अजान

(१६)

त्रिमूर्ति—ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र (शिव)

रमाकान्त नामका एक चतुर लड़का था, उसने दूसरे दिन धर्मोपदेश शुरु होते ही एक दम गुरुजीसे प्रश्न पूछा।

गुरुजी! हमारे धर्ममें शिव, विष्णु आदि जुदे जुदे देवता कहलाते हैं इसका क्या कारण है?

गुरुजी—यह अच्छा प्रश्न पूछा गया है। हम लोगोंमें कितने ही ऐसे कट्टर वैष्णव होते हैं कि जो 'शिव' का शब्द भी नहीं प्रयोग करते, क्योंकि उसमें शिवका नाम ले लिया जाता है। इस प्रकारसे बहुतसे शैव भी विष्णुकी निन्दा करते हैं। यह बहुत खोटी बात है। मद्रास प्रान्तमें कभी कभी अज्ञान और स्वार्थसे शैव और वैष्णवोंमें बड़े झगड़े हुये इस कारण अपने शास्त्रोंमें शिव और विष्णुकी निन्दाके श्लोक आ गये हैं, और उन्हें हमारे कितने ही अज्ञानी भाई

शास्त्र समझते हैं। अब मैं तुम्हें इस सम्बन्धमें ठीक ठीक बात बतलाता हूं पर विषय कुछ कठिन है इस लिये ध्यान पूर्वक सुनोः—

कुछ समय पहले मैंने तुम्हारे सामने 'ईश्वर' शब्दकी व्याख्या की थी जो कदाचित् तुम्हें याद होगी। "जिसमेंसे ये सब पदार्थ उत्पन्न होते हैं, जिसमेंसे उत्पन्न हो कर जीते हैं और जिसके प्रति जाते हैं, जिसमें प्रवेश करते हैं वह परमात्मा है"। इस व्याख्यामें परमेश्वर संबन्धी तीन बातें हैं (१) एक तो यह कि वह जगत्का स्रष्टा है, (२) दूसरी यह कि वह इसकी रक्षा करता है, और (३) तीसरी यह कि वह इसका संहार करता है, अर्थात् अपनेमें मिला लेता है। उत्पत्ति, रक्षण और संहार वा लय इन तीन क्रियाओंको ले कर परमेश्वरके तीन रूप वर्णन करनेमें आते हैंः—

(१) एक ब्रह्मा अथात् जिस परमेश्वरमेंसे यह विश्व बढ़ता है, उदित होता है और फलता है।

(२) दूसरे विष्णु अर्थात् जो परमेश्वर इस जगत्में आत्मरूपसे प्रविष्ट हो इस जगत्की रक्षा करता है। रक्षाके निमित्त वह अवतार भी लेता है।

(३) तीसरे रुद्र अर्थात् जो परमात्मा प्रलयके तूफान और अग्निके रूपसे इस जगत्का संहार करता है, पर कितने ही कहते हैं कि यह जगत् स्वयं ही तूफान रूप है, और यदि

यह शान्त हो जाय तो जिसमें यह शान्त होता है वह एक परमात्मा ही है। इस लिये रुद्र का ही दूसरा नाम शिव है, अर्थात् जो संहार करता है वही सुख भी देता है। फिर तुम्हें याद होगा कि वेदमें जो अग्नि है वह सब वस्तुओंको जलाकर भस्म कर डालती है पर साथ ही साथ घर घरमें बसकर सबको वह सुख भी देती है। यह शुभ कल्याणकारी अग्नि ही शिव है। अग्निकी सीधी ज्वाला वही शिवकी मूर्ति (शिव लिङ्ग) है। अग्निकी ज्वालाके साथ धुएँकी काली पीली लटें वे ही शिवजीकी जटा हैं, अग्निके पधरानेको वेदि (कुण्ड) यह शिवजीकी जलाधारी है, और अग्निमें हवन किया हुआ घी तो शिवजीकी मूर्तिपर पड़ने वाला जलका अभिषेक है। इस प्रकारसे वेदकी अग्निपूजा ही पुराणोंकी शिवपूजा है और इसी कारणसे शैव सम्प्रदायमें भस्म लगानेकी इतनी महिमा है।

स्रष्टा—रचनेवाला संहार—नाश

(१७)

गणपति और माता

कुछ दिन पहले गणपति उत्सव हुआ था, उसके बाद नवरात्रके दिन आये और फिर विजयादशमी तो कल ही

हो चुकी है, इसलिये सबके मनमें गणपति, दुर्गा और राम-रावणके नाम रम रहे थे ॥

गुरूजी—बालको! ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र (शिव) ये तीन जुदे जुदे देवता नहीं, पर एक ही परमेश्वरके तीन विशेषण वा नाम हैं। यह तो तुमपर विदित ही है कि इनमेंसे विष्णु और शिवकी पूजा तो होती ही है, पर क्या तुमने ब्रह्माकी पूजा होते हुये देखी है?

हरिलाल—नहीं महाराज! कहते हैं कि केवल अजमेर-के पास पुष्कर नामक एक तालाब है, जिसके किनारे एक सुन्दर सफेद पत्थरकी ब्रह्माकी मूर्ति है जिसकी पूजा होती है।

गुरूजी—ठीक, पर मेरा कहना है कि तुम सबने थोड़े ही दिन पहले, ब्रह्माकी वा जिसके नाममें ब्रह्मा शब्द आता है ऐसे एक देवताकी-पूजा होती हुई देखी है, और शायद तुम-मेंसे कितनों हीने पूजा भी की होगी।

यह सुन सब बच्चे अचम्भेमें पड़ गये और इस बातको न समझनेके कारण एक दूसरेकी तरफ देखने लगे।

गुरूजी—क्या तुमने थोड़े ही दिन पहले गणपति-उत्सव नहीं किया था? यह गणपति पूजा ब्रह्मा वा ब्रह्मणस्पति इस नामके देवताकी पूजा है। परमेश्वरकी स्तुति-वेदके मन्त्र-यही 'ब्रह्म' शब्दका अर्थ है। हमारे ऋषियोंका मत है कि परमेश्वरकी स्तुति द्वारा ही इस जगत्में हरेक वस्तु उत्पन्न

होती हैं और बहुतसी हैं। इसकारण इस स्तुतिके देवता 'ब्रह्मा' हो इस सृष्टिके कर्ता हैं। उनका बड़ा नाम 'ब्रह्मणस्पति' (अर्थात् ब्रह्मके-स्तुतिरूपी वाणीके-पति, देवता) है। इन ब्रह्मणस्पतिको वेदमें एक जगह 'गणोंका पति, गणपति' ऐसा विशेषण लगाया है, इसलिये ब्रह्मणस्पति गणपति कहलाये। (गण = समूह) अर्थात् ईश्वरके स्तुतिरूपी वेद मन्त्रोंके जो समूह-गण-उनके पति वे गणपति हैं। ईश्वरकी स्तुति करनेमें सब विघ्नोंका नाश होता है, इसलिये हरएक शुभ काम करनेके पहले गणपतिका पूजन वा स्मरण करनेमें आता है। पुस्तकमे भी पहले 'श्री गणेशाय नमः' अर्थात् श्री गणपतिको नमस्कार यह लिखा जाता है। यात्रामें जानेपर उन्हींका स्मरण किया जाता है और विवाह, जनेऊ आदि शुभ प्रसङ्गोंपर गणपतिकी स्थापनाके पश्चात् सब काम शुरू होता है। वाणीके पति ब्रह्मणस्पति विद्याके देवता हैं। अतएव गणपति भी विद्याके देवता हैं। इस कारण जब हम बच्चोंको पाठशालामें बिठलाते हैं तब हम विशेषरूपसे गणपतिहीका स्मरण करते हैं॥

हरिलाल—गुरूजी! इसका निष्कर्ष यह है कि विद्याके देवताका स्मरण करनेसे सब विघ्न नष्ट होते हैं। यह कितना सुन्दर भाव है।

गुरूजी—ठीक है। हमारे शास्त्र कहते हैं कि यदि ईश्वरकी स्तुति करें और विद्या पढ़ें तो सब तरहकी अड़चनें दूर हो जाती हैं।

अब दूसरी बात सुनो। नवरात्रिमे देवीकी पूजा हुई थी। वह देवी तो परमेश्वरकी विश्वमे भ्राजमान शक्ति है। उससे यह समस्त जगत् उत्पन्न हुआ है। इसलिये उसे हम 'अम्बिका' अथवा 'माताजी' भी कहते हैं। उस परमेश्वरकी शक्ति तीन तरहकी है, एक तो विद्या जिसे 'सरस्वती' कहते हैं, जो इस विश्वमें नदीकी भांति बहती रहती है। दूसरी इस विश्वमें फैली हुई सुन्दरता है जो ईश्वरका चिन्ह है, जिसके कारण हमें ईश्वरका भान होता है, इस स्वरूपको 'लक्ष्मी' कहते हैं। इसके सिवाय इस विश्वमे सुन्दरताके साथ जो विकराल रूप देखनेमें आता है, जो ईश्वरकी प्रचण्ड शक्ति सब पदार्थोंका भक्षण करती है, वह उसकी तीसरी शक्ति है।

बालको! बतलाओ कि वह कौनसी शक्ति है जो सारे पदार्थोंका भक्षण करती है?

हरिलाल—काल।

गुरूजी—ठीक। तो सब जगत्को भक्षण करनेके लिये मुंह फाड़कर खड़ी हुई इस प्रभुकी तीसरी शक्तिका नाम 'काली' वा 'चण्डी' है। किन्तु जैसे रुद्र शिवरूप भी हैं वैसे ही 'काली' भी 'गौरी' है। (गोरे शिवकी पत्नी, मङ्गलकारी परमेश्वरकी श्वेत उज्ज्वल शक्ति)।

इस प्रकार महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती ये तीन प्रभुकी शक्तिके रूप हुये। और ये शिव वा रुद्र, विष्णु और ब्रह्मा इन तीनोकी तीन पत्नियां कही जाती हैं। ब्रह्मा यह

वाणीके देवता और उनकी पत्नी सरस्वती-वाणीकी देवी हैं ।

जगत्‌में व्याप्त विष्णुकी पत्नी लक्ष्मी जी हैं । वे सुन्दरता-को मूर्ति हैं। और संहार करनेवाले ईश्वर रुद्र वा महाकालेश्वर-उनकी पत्नी महाकाली सब पदार्थोंके भक्षण करने वाली शक्ति हैं ॥

हरिलाल—गुरूजी ! महाकालीको सिंह वा व्याघ्र पर बिठाते हैं । इसका कदाचित् यह कारण हो सकता है कि वे सबके भक्षण करने वाली शक्ति हैं ।

गुरूजी—ठीक यही बात है । और सरस्वतीको हंस पर बिठाते हैं। कवि लोग कहते हैं कि हंस मोती चुगता है और दूध और पानीको जुदाकर उसमेंसे दूध पी लेता है और पानी छोड़ देता है। इसी प्रकार सरस्वती अथवा विद्या, जो वस्तु सुन्दर और सत्य होती है उसका ग्रहण करती है, और जो खोटी और मैली होती है उसे छोड़ देती है । लक्ष्मीजी विष्णुके साथ गरुड़पर बैठती हैं, इसका अर्थ गम्भीर है, इसे तुम झट न समझ सकोगे इसलिये मैं उसे न कहूंगा ॥

निष्कर्ष=सार भ्राजमान=प्रकाशमान

---

(१८)

अवतार

गुरुजी—बालको ! उस बाल पुस्तकमें जो 'चन्द्रमा' की कविता है क्या वह तुम्हें याद है ?

बहुतों को वह मधुर कविता याद थी इसलिये उनमेंसे एक बोला:-

रमाकान्त—गुरु जी ! मैं बोलूंगा—

"माई मोहि चन्दा प्यारो देरी ।
चन्दा प्यारो देरी माई मोहि चन्दा प्यारो देरी ॥
नो लख तारे बीन गगन ते गोदी में भर देरी ।
माई मोहि च दा प्यारो देरी ॥

बालकने यह कड़ी गाई। गुरूजीने कहा—"बस अब यह कहो कि वह चन्द्रमाको गोदीमें रख कर उससे खेलना क्यों चाहता था ?

कान्तिलाल—चन्द्रमा एक बहुत ही मनोहर वस्तु है।

गुरुजी—तो कहो, यदि ईश्वर भी तुम्हारे समीप हो तो तुम्हें अच्छा लगे वा नहीं ?

राधाकान्त—क्यों न अच्छा लगे? यदि वह देख पड़े और उसके साथ बात चीत हो सके तो कैसा अच्छा हो ?

गुरुजी—विचारचन्द्र ! तुम क्या कहते हो ?

विचारचन्द्र—जो राधाकान्त कहता है ठीक ही है, पर ईश्वर किस रीतिसे देखा जा सकता है, उसके साथ बात चीत कैसे हो सकती है ? वह कुछ इस मेज वा इस वृक्षके सदृश नहीं जिसे हम अपनी दृष्टिसे देख सकें और उसके साथ बात चीत कर सकें।

गुरुजी—ठीक. अब मेरे दूसरे प्रश्नका उत्तर दो। ईश्वर कहां रहता होगा? अपने पास या दूर?

विचारचन्द्र—वह हमारे समीप और हमसे दूर भी रहता है, दूरसे दूर तारेमें और समीपसे समीप हमारे हृदयमें उसका वास है।

कवि दलपतरायकी सुन्दर कविताका यही भाव है:—

आस पास आकाश महँ, अन्तर महँ आभास।
पात पातमें पाइये, विश्व पतिको वास॥

गुरुजी—तो वह क्यों नहीं देख पड़ता?

विचारचन्द्र—कारण यह कि उसका शरीर नहीं।

गुरूजी—शरीर हो तो क्या वह देखनेमें आवे?

बिचारचन्द्र—हाँ साहिब।

गुरूजी—लेकिन मेरा तो शरीर है ही, मैं तुम्हें कहां नजर आता हूं?

विचारचन्द्र—यह आप दिखाई तो दे रहे हो।

गुरूजी—यह तो मेरा शरीर दिखाई देता है।

विचार चन्द्र—लेकिन शरीरमें आप हैं न!

गुरूजी—तो आप इसी प्रकार समझो कि इस विश्व रूपी शरीरमें भी ईश्वर निवास करता है और इस लिये वह दूरसे दूर रहता हुआ हमारे समीपसे समीप है। उसका समीप आना ही उसका अवतार, अर्थात् नीचे उतर

कर आना, है। किन्तु इस विश्वमें उतर कर आना तो उसका सामान्य अवतार है, पर इसके सिवा उसके कितने ही विशेष अवतार भी होते हैं। प्रभु इस विश्वके कण कणमें व्याप्त है तथापि हमारे ऐसे साधारण मनुष्य उसे देख नहीं सकते, लेकिन जब वह अमुक पदार्थमें वा अमुक मनुष्यमें प्रकट होता है तब हम उसे तुरन्त पहिचान सकते हैं।

चुन्नीलाल--गुरुजी, वे पदार्थ वा मनुष्य कहां होंगे जिनमें हम प्रभुका अवतार देख सकें?

गुरुजी—इस विश्वमें जो जो वस्तु सुन्दर, प्रतापी और अद्भुत शक्तिवाली हो उन सभी में।

चुन्नीलाल—तो जगत्‌के सभी बड़े २ पुरुषोंमें प्रभुका अवतार है।

गुरुजी—हाँ।

विचारचन्द्र—लेकिन उनमें तो बहुतसे दुष्ट पुरुष भी होते हैं।

गुरुजी—ठीक, लेकिन दुष्टतामें बड़प्पन नहीं। बड़प्पन जगत्‌के कल्याण करनेमें है। अपने ज्ञानसे, न्यायसे, प्रेमसे, उपदेशसे इत्यादि बहुत रीतिसे जो दुनियापर उपकार करते हैं उनमें ईश्वरका अवतार समझना चाहिये। ईश्वर कुछ ऊँचे आकाशमें बैठा हुआ इस जगत्‌को नहीं चलाता, वह तो हमारे अन्दर बस कर काम करता है। भगवद्गीतामें भगवान् कृष्ण कहते हैं कि जब जब धर्मका ह्रास होता है

और अधर्म उठ खड़ा होता है तब मैं सत्पुरुषोंके रक्षण करनेके लिये और दुष्टोंके नाश करनेके लिये, और इस रीतिसे धर्मको फिर स्थापन करनेके लिये, अवतार लेता हूं।

जगत्का रक्षण करना—यह काम विष्णु भगवानका है। इस कारण प्रायः विष्णुके ही अवतार हुये माने जाते हैं। ऐसे अवतार दस अथवा (दूसरी संख्याके अनुसार) चौबीस कहे गये हैं। उनमेंके कितने ही तो परमेश्वरके स्वरूप समझानेके लिये बनाये हुये दृष्टान्त हैं,-जैसे कूर्मावतार। कछुआ जैसे अपने अङ्गको भीतर खींच लेता है और फिर फैला देता है उसी प्रकारसे परमात्मा भी सृष्टि रूपी अंगको अपने हीमें संकुचित कर लेता है और फिर उसे फैला देता है। कितने ही अवतार जगत्के लिये सिर्फ ज्ञान देने वाले महापुरुष हैं, जैसे ऋषभदेव, कपिल, बुद्ध। कितने ही दुष्टोंका हनन कर जगतकी रक्षा करनेके लिये हैं, जैसे नरसिंह, परशुराम, राम और कल्कि, और कितने ही ज्ञान और रक्षण दोनों हीके निमित्त होते हैं, जैसे कृष्ण॥

---

(१६)

राम और कृष्ण।

विष्णुके सब अवतारोंमें राम और कृष्ण ये दो अवतार मुख्य गिने जाते हैं। नारायण, वासुदेव इत्यादि नामोंसे

भी विष्णुका भजन होता है, किन्तु वैष्णव पन्थका अधिक भाग राम अथवा कृष्णके नाम हीसे विष्णुका भजन करते हैं।

नारायण—नर मनुष्य, उनका समूह नार, अयन अर्थात् स्थान—अर्थात् परमेश्वर सब प्राणि मात्रकी उत्पत्ति, स्थिति और अन्तिमगतिका स्थान है।

वसुदेवके पुत्र वासुदेव—कृष्ण, इस प्रकारका एक अर्थ है। किन्तु ईश्वर रूपसे जब इसका अर्थ ग्रहण करना होता है तब प्राणिमात्रमें बसनेवाला, प्राणिमात्रको बसानेवाला, और उसमें दीप्तिमान प्रकाशमान परमात्मा यही इस वासु देव शब्दका अर्थ होता है॥

राम—प्राणिमात्रमें रमण करनेवाले और उसे रमानेवाले प्रभुका नाम राम है। राम दशरथ राजाके पुत्र और सीताके पति थे यह तो उनका स्थूल अवतार रूप था। उस अवतार का चरित्र तुम सबने बहुत बार पढ़ा और सुना होगा किन्तु उस अमृतको पीकर किसे परितृप्ति होती है? अत-एव हम उस चरित्रका संक्षेपमें फिर स्मरण करें। रामा-वतारमें रहकर प्रभुने पिताके वचनका पालन किया। भरत को राज सिंहासन सौंपकर स्वयं सीता और लक्ष्मणके साथ वे वनमें गये। जब रावण सीताको पञ्चवटीसे ले गया तब उनकी खोजमें वे दक्षिणकी ओर चले जहां सुग्रीव और हनु-मानके साथ उनकी मैत्री हुई। हनुमान सीताजीकी खोजके लिये भेजे गये। वे समुद्र पारकर लङ्कामें पहुंचे जहां अशोक-

वाटिकामें, रातदिन निरन्तर रामनामकी रटना करती हुई सीताजीको उन्होंने देखा। उनसे मिलकर हनुमान पीछे लौटे और सीताजीका सारा वृत्तान्त रामको कह सुनाया। समुद्रपर पुल बांधकर राम अपनी वानर सेनाके साथ लङ्का मे उतरे, रावणके साथ युद्ध किया, रावणको मारा, रावणके भाई विभीषणको गद्दीपर बिठाया और सीताको ले अयोध्याको वापिस आये। वहां न्यायसे और प्रजाको सुखी रखकर उन्होंने राज्य किया, और समय पानेपर वे स्वधामकी ओर प्रस्थित हुये। एक वचन, एक पत्नीव्रत, धैर्य-न्याय-और प्रजारञ्जन इन गुणोंके लिये रामावतार प्रसिद्ध है।

कृष्ण—'जब कभी धर्मकी अवनति और अधर्मका उत्थान होता है तब साधु पुरुषोंकी रक्षाके लिये और दुष्ट पुरुषोंके विनाशके लिये जिसने अवतार लिया उस प्रभुका नाम कृष्ण है।" उनके अवतार संबन्धी जीवनमे तीन भाग है—एक तो गोकुलके कृष्ण, दूसरा द्वारिकाके कृष्ण, और तीसरा अर्जुनके सखा, कुरुक्षेत्रके युद्धमें उनका सारथि बनना और ऐसी विषम अवस्थामें उसे उपदेश देना। परमात्माकी सच्ची भक्ति जैसी गोपियोंके प्रेममंथी वैसी ऋषियोंके यज्ञमे भी न थी, जैसी स्त्रियोंमें थी वैसी पुरुषोंमें न थी, जो अनेक देवताओंकी उपासनासे उत्पन्न न हो सकी थी वह अनन्य भक्ति एक प्रभुके शरणागत होने ही से हुई। येही गोकुल लीलाके उपदेश हैं। द्वारकामें राज्य स्थापित कर यदुवशियों

की राज्य-सत्ता चहुं ओर फैलायी, अपने गृहस्थाश्रमके धर्मोंका पालन किया, जरासन्ध आदि राजाओँको मारकर अनेक राजाओंको बन्दीगृहसे छुड़ाया इत्यादि ये सब वृत्तान्त कृष्णके द्वारकाके राज-जीवनके हैं। पांडवोंके साथ संबन्ध और स्नेहके कारण युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें मेहमानोंके पाद प्रक्षालनका काम विनय भावसे आपने अपने ऊपर लिया। कौरव पांडवोंके युद्धके पूर्व, जहां तक हो सके युद्ध न हो तो अच्छा ऐसा विचार ठानकर दुर्योधनको समझाने वे स्वयं गये। दुर्योधनने न माना, युद्धकी तैयारियां हुईं।

दोनों सेनाय एक दूसरेके सन्मुख सजधजकर तैयार हुईं, कृष्ण अर्जुनके सारथि बने। किन्तु जिस घड़ी उन्होंने अर्जुनका रथ कौरव सेनाके सामने लाकर खड़ा किया त्यौंही अर्जुन अपने बन्धु-बान्धव और वृद्ध गुरु और स्वजनोंको युद्धके लिये उद्यत देख युद्धसे पराङ्मुख होने लगे। उनकी छाती कांप उठी, धनुष हाथसे गिर पड़ा, शरीरमें पसीने छूट निकले। वे कृष्णसे हाथ जोड़कर पूछने लगे "भगवन्! इन सगेसंबन्धियोंके सामने शस्त्र कैसे उठाया जाय? उठाऊंगा तो पाप होगा, कुटुम्बका क्षय होगा, और लड़कर भी मैं जीतूँ होगा इस बातका भी मुझे कुछ भरोसा नहीं! अतः जैसा तुम कहो वैसा करूं। क्या मैं लडूं वा न लडूं!-मुझे तो कुछ भी नहीं सूझ पड़ता। उस समय श्रीकृष्णने अर्जुनको एक ऐसा विशाल उपदेश दिया कि जिसमें सब धर्मोंका समावेश हो

जाता है। वह उपदेश भगवद्गीताके नामसे प्रसिद्ध है, और हिन्दू धर्मके सभी आचार्य और गुरुओंने, चाहे वे शैव अथवा वैष्णव हों, इसका बहुत ही आदर किया है।

बन्दीगृह = जेल। अनन्य = तन्मय। मचालन = घोड़ा।

---

(२०)

चार पुरुषार्थ

गुरुजी--बालको! प्रारम्भ में निश्चय की हुई अपने धर्मकी व्याख्या तो तुम्हें याद होगी?

परमेश्वरको समझना, उसका भजन करना, उसकी इच्छानुसार काम करना जिससे अपनी और सबकी आत्माका भला हो—इसका नाम 'धर्म' है। हिन्दूधर्ममें परमेश्वरके समझने और भजनेके लिये उसका स्वरूप कैसा माना गया है यह मैं बतला चुका हूं। परमेश्वर कैसे कर्म करनेसे प्रसन्न रहता है इस विषयमें अब थोड़ा विचार करें।

सुबोध—कैसे काम किये जाँय कि ईश्वर प्रसन्न रहे? यदि यह आप मुझसे पूछें तो मैं यह कहूंगा कि नीतिके अनुसार व्यवहार करनेसे ईश्वर सन्तुष्ट होता है।

गुरुजी—तो नीति क्या है?

सुबोध--सत्य बोलना, विश्वास पात्र बनना, किसीका भला करना, इत्यादि।

गुरुजी--ठीक, इस विषय पर आगे चलकर और विशेष विचार करेंगे। किन्तु इसके साथ कोई तुमसे यह पूछे कि कमाना भला है वा बुरा, तो तुम क्या कहोगे?

सुबोध--कमाना भला ही है। उद्योग करना और पैसा कमाना ये बातें प्रामाणिकताके साथ होनी चाहिये।

गुरुजी--यदि कोई फिर तुमसे पूछे कि क्या धन कमा कर सुख भोगना चाहिये वा नहीं तो तुम क्या कहोगे?

सुबोध--बेशक, सुख भोगना उचित है, किन्तु निरुद्यमी रहकर धनोपार्जनके बिना सुख भोगना ठीक नहीं और न ऐश आराम ही करना उचित है।

गुरुजी—फिर कोई यदि तुमसे पूछे कि क्या अर्थोपार्जन और सुखोपभोगके साथ ईश्वर भक्ति-कुछ परलोकका विचार करना-उचित है वा नहीं, तो तुम क्या कहोगे?

सुबोध—महाराज! यह तो उचित ही है।

गुरुजी—अब सुनो, तुम आज हिन्दू धर्म-शास्त्रके एक बड़े सिद्धान्तको साधारण विचार करते करते सीख गये। वह यह कि चार पुरुषार्थोंके सिद्ध करने और यथासभव इन चारोंका एक दूसरेके साथ मेल करनेमें मनुष्यके जन्मका सार्थक्य वा प्रयोजन है। वे पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष हैं।

'धर्म' अर्थात् नीतिनियम, यह करना चाहिये, यह न करना चाहिये इस तरहकी आज्ञायें जिन पर जन-समाज स्थित है।

(२) 'अर्थ'—अर्थात् धन जिसके उपार्जनमें मनुष्य दिन रात दौड़ता फिरता है।

(३) 'काम'—अर्थात् कमाना, सुखोपभोगकी इच्छा।

(४) 'मोक्ष'—अर्थात् बन्धनमेंसे छूटना। इस संसारमें हम जिन अज्ञान दुःख और पापसे परिवेष्टित हैं उनसे छूटना ही मोक्ष है।

वीरेन्द्र—गुरुवर! क्या हम धर्मानुसार चलनेसे पाप और दुःखसे न छूट सकेंगे?

गुरुजी—अवश्य छूट सकेंगे, यदि हम धर्म शब्द को विशाल अर्थमें समझकर तदनुसार चलें तो छूटना संभव है; यदि धर्म अथवा नीतिनियमोंको ही इन समझकर बैठ रहे और परमेश्वरका विचार और उसकी भक्ति इत्यादि बड़े २ विषय छोड़ दें तो मोक्ष कैसे संभव है। इनके बिना अपना मनुष्य जीवन व्यर्थ ही समझना चाहिये। इस लिये हिन्दू धर्म शास्त्रमें धर्मके उपरान्त मोक्ष माना जाता है।

वीरेन्द्र—गुरुदेव! तो यह चौथा पुरुषार्थ सबसे उत्तम है।

गुरुजी—हां, किन्तु वह पहले पुरुषार्थोंके बिना हो नहीं सकता। परमेश्वरकी भक्ति-परमेश्वरका ज्ञान, धर्म और नीतिके बिना हो नहीं सकती। इस लिये धर्म सबका आधार है। अर्थ

और काम ये भी पुरुषार्थ हैं—क्योंकि पैसा कमाने और सुखोप भोग करनेसे परमेश्वर नाराज़ नहीं होता—तथापि इन दोनों को धर्म और मोक्षके अधीन रखना चाहिये ।

निष्कर्मी=उद्यमरहित—कुछ कार्य न करना ।

उपार्जन=कमाना—परिवेष्टित=बांधा हुआ ।

(२१)

चार वर्ण (१)

गुरुजी—बालको ! तुम इतना तो समझ गये होगे कि अब हम धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारोंको लक्ष्यमें रख कर चलेंगे तभी हमारा जीवन पूर्णरूपसे सार्थक होगा। लेकिन यदि कोई तुमसे पूछे कि धर्म क्या वस्तु है, धनका कैसे उपार्जन करना चाहिये, सुखोपभोग कैसे करना चाहिये, ईश्वरका अनुभव किस रीति से होगा इत्यादि, तो तुम क्या उत्तर दोगे ?

आनन्द—हम कुछ थोड़ी बात कह सकते हैं किन्तु इन प्रश्नोंका यथोचित उत्तर हम न दे सकेंगे। विद्याके पढ़े बिना ये सब बातें ठीक ठीक समझमें नहीं आतीं ।

गुरुजी—ठीक, विद्या ही सब पुरुषार्थोंको सिद्धिका मूल

है। विद्याके बिना कुछ भी हो नहीं सकता, इसलिये देशमें बहुत सी पाठशालायें, शिक्षक और उपदेशक होने चाहियें।

लेकिन, बालको—ईश्वर न करे ऐसा हो—मानों इसी क्षण हमारी पाठशालामें लुटेरे अकस्मात् आ घुसें तो?

सूर्यदेव—पर लुटेरे कैसे आ सकते हैं राजा हमारी रक्षा करता है। उसके नियत किये हुये पुलिस विभाग का यह कर्तव्य है कि वह लुटेरोंको पकड़े और सजा करावे।

गुरुजी—पर यदि लुटेरे शस्त्र लेकर मारने आवें तो?

सूर्यदेव—जहां तक हो सके उन्हें पकड़ना चाहिये, नहीं तो फिर मारना चाहिये।

गुरुजी—ठीक, तो इतना ध्यानमें रखो कि जन-समाजमें जैसे विद्वान गुरु और उपदेशकोंके एक वर्गकी आवश्यकता है वैसे ही प्रजाकी रक्षा करने वालोंका दूसरा वर्ग होना चाहिये।

लेकिन यह कहो कि पाठशालाके गुरु और पुलिस विभागके निर्वाहके लिये धन चाहिये वह कहां से मिले?

चन्द्रकान्त—(विचार कर) सरकार हमारे पाससे जो कर लेती है उसमेंसे पैसे दे।

गुरुजी—यदि लोगोंके पास पैसे ही न हों तो?

चन्द्रकान्त—यदि हम पढ़ें और उद्योग करें तो क्या हम अपने प्रतापी राजाकी छत्रछायामें बस कर धनोपार्जन नहीं कर सकते?

गुरुजी—तुम्हारा उत्तर एक तरहसे ठीक है, लेकिन यदि लोग केवल कर देकर बैठ रहें और राजा सिर्फ रक्षा मात्र करे तो इतनेसे क्या बड़े २ विद्यालय, औषधालय, रेल, धर्मशालायें इत्यादि जो सार्वजनिक हित और आरामके लिये अनेक साधन चाहियें वे कैसे पूरे पड़ सकते हैं। हममेंसे कितने ही खेतीमें सुधार कर, नये नये हुनर निकाल कर, तथा देस-परदेसमें व्यापार चलाकर यदि खूब धनोपार्जन करें और उस धनका लोगोंकी भलाईमें उपयोग हो तो ही हम सुखसे जीवन व्यतीत कर सकते हैं। इसलिये जन-समाजमें इस तरहका काम करने वाले कितने ही धनवान और धन कमानेवाले पुरुष अवश्य होने चाहिये। यह जन-समाजका तीसरा वर्ग है।

अब यह कहो—ये धनवान लोग तो धन पैदा करते हैं, पर दुनियामें यदि मज़दूर ही न हों तो क्या धन पैदा हो सकता है?

रमानाथ—नहीं। मैं एकबार बड़े २ कारखानोंमें गया था वहां मैंने मज़दूरोंके झुण्डके झुण्ड देखे। वे ही लोग करोड़ों रुपयोंका सामान बना रहे थे।

गुरूजी—ठीक, मज़दूर जनसमाजका चौथा वर्ग है। पर यह ध्यानमें रखना चाहिये कि यदि लोहेके ढालने और बिजलीके पैदा करनेकी विद्या सिखाने वाले पण्डित न हों, रक्षा करनेके लिये कोई राजा न हो और कलकारखानोंके

धनवान मालिक भी न हों, तो बिचारे मजदूरोंको जीविका भी मुश्किलसे मिलेगी। इसलिये सचमुच जनसमाजमें इन चारों वर्गोंकी आवश्यकता है।

अतएव हिन्दू धर्मशास्त्रकारोंने जनसमाजके चार वर्ग बनाये हैं जो 'वर्ण' कहलाते हैं। ये चार वर्ण इस प्रकारसे हैं-

(१) ब्राह्मण—जिनका विशेष काम, विद्या पढ़ना, पढ़ाना और धर्मका उपदेश करना है।

(२) क्षत्रिय—जिनका ख़ास काम, प्रजाकी रक्षा करना और युद्धमें लड़ना है।

(३) वैश्य—जिनका विशेष काम, खेती, पशुपालन और व्यापार आदि साधनोंसे धन पैदा करना है।

(४) शूद्र—जिनका ख़ास काम मज़दूरी करना और तीनों वर्णोंकी सेवा करना है।

सार्वजनिक=सभीके लिये, या सभीसे संबन्ध रखने वाला।

जनसमाज=मनुष्योंका समुदाय।

(२२)

चार वर्ण। (२)

ब्रजनाथ—गुरुजी! कहते हैं कि प्राचीन समयमें हमारी समाज एकरूप थी और फिर कालान्तरमें उसमें ब्राह्मण,

क्षत्रिय वैश्य और शूद्र ये चार विभाग पड़ गये, यह क्या सत्य है ?

गुरुजी ठीक । जब तक जनसमाज सादी स्थितिमें रहती है तब तक एक मनुष्य अनेक धन्धे कर सक्ता है, लेकिन जैसे २ जन संख्या बढ़ती जाती है और नई आवश्यकताएं उत्पन्न होती हैं वैसे वैसे धन्धे भी बढ़ते जाते हैं। गाँवमें बनिये की दूकान पर आटा दाल बिकता है. वहीं कपड़ेके चार थान भी पड़े होंगे और एक खानेमे पत्थरके बर्तन भी रखे होंगे। परन्तु शहरमें इन सबकी दुकानें जुदी जुदी होंगी। लोहेकी ईजादके पहले हल बनाने वाला कदाचित् बढ़ई होगा, लोहेकी ईजादके बाद कुछ दिन लुहारका काम बढ़ई करता रहा होगा, पर अन्तमें लुहारके कामके बढ़ जानेसे बढ़ई और लुहारके पेशे जुदे हो गये। इस प्रकार एकमेंसे अनेक धन्धे बन गये और जनसमाजके वर्ग बंधे। मूलमें एक ही वर्ण था यही महाभारत और भागवत आदि पुस्तकोंमें उल्लेख है।

देवदत्त—किन्तु, गुरुजी, कहते हैं कि वेदमें यह कहा गया है कि ब्राह्मण मुख है, क्षत्रिय बाहु है, वैश्य जांघ है, और शूद्र पैर है। इसका अर्थ क्या है ?

गुरुजी—इसका अर्थ तुम नहीं समझे। इसका अर्थ यह नहीं कि इन्हें एक दूसरेसे जुदा समझना चाहिये, इसके विपरीत, इसका अर्थ तो यह है कि सब एक ही महापुरुष

परमात्माके अवयव हैं। एक शरीरमें एक अवयव चाहे ऊंचे स्थान पर हो वा नीचे स्थान पर हो, लेकिन इस कारण किसीको निकम्मा समझना न चाहिये, बल्कि उसे एक ही परमेश्वरके शरीरके ही अवयवके समान देखना चाहिये।

चन्द्रशेखर—(आश्चर्यके साथ) तो गुरुजी ! ऐसा अर्थ करना चाहिये कि ये सब वर्ण एक हैं, किन्तु लोग तो ऐसा अर्थ करते हैं कि सब जुदे जुदे हैं। कैसा अज्ञान !

गुरुजी—यथार्थ है। तुमही विचारो कि यदि ऐसा न न होता तो यह बात पुरुष सूक्तमें-जो मुख्यतया परमात्माके ही विषयमें है—किसलिए रखी जाती ? किन्तु तुम्हारी समझमें कुछ फेर रहा है इसे मैं निकालना चाहता हूं। सब एक नहीं किन्तु सब मिल कर एक हैं—सब एक शरीरके ही अवयव हैं।

देवदत्त-गुरुजी ! तो हिन्दू धर्मके अनुसार कोई वर्ण ऊंचा नीचा नहीं ?

गुरुजी—धर्मानुसार नहीं है। लोकमें वे ऊंचे नीचे गिने जांय किन्तु धर्म तो यही मानता है कि वे सब एकही परमात्माके अवयव हैं। और इस कारण वेदमन्त्र हमें कहता है कि—भाइयो, तुम्हारेमें ऊंच नीचके भेद, अपने अपने कामके अनुसार पड़ गये हैं, पर यह समझ लो कि सब एक ही महापुरुषके अंग हैं। (यह सुन, जुदे जुदे वर्णोंके होते हुए भी सब विद्यार्थियोंका ऊंच नीचका अभिमान जाता रहा।)

हरिलाल—गुरुजी! अब मेरा सिर्फ एक बातका प्रश्न है। हिन्दू धर्मशास्त्रके अनुसार क्या ब्राह्मण कुलमें जन्म लेनेवाला ब्राह्मण होता है अथवा विद्वान और विद्या पढ़ाने वाला ब्राह्मण है?

गुरुजी--मूलमें तो कर्म और गुणके अनुसार ही विभाग पड़े थे, अर्थात् धन्धेके कारण, और धन्धेका असर मनुष्यके स्वभाव पर होता है इसके कारण जन-समाजमें विभाग पड़े। किन्तु सारा जनसमाज एक ही धन्धे पर आरूढ़ होकर देशका हित नहीं बिगाड़ता, जैसे बोद्ध-कालमें हजारों स्त्री पुरुष बिना कुछ विचारे भिक्षु और भिक्षुणी बन गये और जैसे सारा जर्मन देश आज युद्धके व्यसनमें पड़ा है। तथापि बाप दादोंका धन्धा सरलतासे सीखा जा सकता है और उसमें प्रवीणता सुगम रीतिसे मिल जाती है, इसलिये यह साधारण नियम बना दिया गया कि हरेक अपने अपने कुल के धन्धे ही किया करे। परन्तु इस नियम के, गुण और कर्मके अनुसार, विपरीत दृष्टान्त भी होते थे। विश्वामित्र क्षत्रिय होते हुए भी तपके प्रतापसे ब्राह्मण हो गये। कवष ऐलूष शूद्र थे, किन्तु उनकी धार्मिकता देख ऋषियोंने उन्हें अपने मण्डलमें ले लिया था, जानश्रुति पौत्रायण नाम का एक शूद्र राजा भी ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर सका था। ऐसे अनेक दृष्टान्त हमारी प्राचीन पुस्तकोंमें पढ़नेमें आते हैं।

चन्द्रकान्त—गुरुदेव ! मेरा एक प्रश्न यह है कि इन चार वर्णोंमेंसे इतनी अधिक जातियां कैसे बन गईं ?

गुरुजी—इसका एक कारण यह है कि वैश्योंके जुदे जुदे धन्धोंके कारण जुदे जुदे वर्ग बन गये। जो दूसरे भागमें बसनेके लिए गये उन्होंने अपने अपने मूल वतनके अनुसार जुदा जुदा टोलियां बनालीं, और उन टोलियोंमें भी अच्छे बुरे रिवाजोंके भेदसे और परस्परके झगड़ोंसे, इत्यादि अनेक कारणोंसे तड़ पड़ते चले गये। लेकिन हिन्दू धर्मशास्त्रके अनुसार तो जनसमाजके केवल चार वर्ण हैं और वे भी मूलमें कर्म और गुणके अनुसार ही पड़े हैं। हमारे पूर्व कथनानुसार ये चार वर्ण हजारों मुख हाथ पैर वाले जनसमाज रूपी एक ही महापुरुषके अंग हैं इस तत्वको समझ लेना परम आवश्यक है।

(२३)

चार आश्रम।

गुरुजी—बालको ! हिन्दू धर्ममें जो वर्ण व्यवस्था बांधी गई है उसके विषयमें हमारे लम्बे चौड़े विचार करने का कारण तो तुम समझे हो होगे ?

केशवः—हां, हमारे धर्ममें जातपांतकी बात बड़ी मानी जाती है और आजकल सब जगह, जातपांत रहनी चाहिये वा नहीं इस विषयमें बहुत विवाद होता सुना करते हैं। इसलिये इस प्रश्न पर विशेष विचार करना आवश्यक था।

गुरुजी—ठीक। यदि धर्मके साथ इसका सच्चा संबन्ध न होता तो मैं इस विषयमें इतनी लम्बी चर्चा न करता। हिन्दु धर्म शास्त्रमें यह व्यवस्था बांधनेका और इसे शास्त्रकी आज्ञा के रूपमें रखनेका अभिप्राय यह है कि जन-समाजकी बिना ऐसी रचना वा व्यवस्था किये हुये, धर्म अर्थ काम और मोक्ष ये चार पुरुषार्थ सिद्ध नहीं हो सकते।

हरिलाल—चारोंको न साधें और एकाद साधें तो क्या काम न चले?

गुरुजी—एक दो मनुष्यका कदाचित् काम चल जाय किन्तु समस्त जनसमाजका काम नहीं चल सकता। कोई भगवद्भक्त मनुष्य तो यह कहेगा कि मुझे पैसा न चाहिये, सुख न चाहिये, मुझे किसीकी सेवा न चाहिये, मुझे कोई मारडाले तो भला, लेकिन मैं तो जब तक इस देहमें जीव है तब तक परमेश्वरका ध्यान ही करूंगा, अर्थात् मुझे अर्थ और कामकी दरकार नहीं, मुझे वैश्य, क्षत्रिय और शूद्र की ज़रूरत नहीं, मैं तो केवल ब्राह्मण ही रहना चाहता हूं तो कदाचित् एक ही पुरुषार्थसे काम चल सकता है। किन्तु सारी जनसमाजके लिये एक ही पुरुषार्थ किस प्रकार पर्याप्त

होगा। जनसमाजमें धन पैदा करने वाले धनिक, श्रम करने वाले मज़दूर और रक्षा करने वाले क्षत्रिय अवश्य चाहियें।

हरिलाल—जनसमाजको चाहिये तो इससे हमें क्या मतलब?

गुरुजी—जनसमाजसे हमारा घनिष्ठ संबन्ध है, उसके कल्याणमें हमारा कल्याण है इसे क्यों भूल जाते हो? इस लिये हमारी धर्मकी व्याख्यामें ही यह बात आती है कि अपना ही नहीं बल्कि सारे जनसमाजका भला करना अपना कर्तव्य है?

ईश्वरने ही जनसमाजका निर्माण किया है, उसके कल्याणके बिना अपना कल्याण भी नहीं। अतएव किसी भी प्रकारकी समाजकी व्यवस्थाका धर्मके साथ घना संबन्ध है। हमारे शास्त्रकारोंने अपने समयके अनुकूल और उपयोगी होनेवाली व्यवस्था बनाई थी। तुम्हें अपने समयके अनुसार यदि जुदी तरहकी व्यवस्था बनानी हो तो बनाओ पर किसी प्रकारकी वर्णव्यवस्था तो आवश्यक ही होगी। यह भी याद रखना चाहिये कि चाहे जैसी व्यवस्था क्यों न हो उसमें धर्मका अवश्य आदरणीय स्थान होना चाहिये, और उस व्यवस्थामें अर्थ और काम, धर्म और मोक्षका तिरस्कार न करने पावें। आधार और छत्तके बिना कभी किसी इमारतको तुमने देखा है?

वर्णव्यवस्थाका हिन्दू धर्ममें इतना अधिक महत्व क्यों है इस बातको लड़के समझ गये ।

गुरुजी बालको ! अब हम आगे चलें । हिन्दू धर्ममें जैसे जनसमाजकी भलाईके लिये कितने ही नियम बनाये गये हैं वैसे ही हरेक मनुष्यको अपना भला किस रीतिसे करना चाहिये इस विषयपर भी विचारकर जीवनके एक सुन्दर 'टाइमटेबिल' की रचनाकी गई है । यह ऐसे विलक्षण विवेक और युक्तिसे बनाया गया है कि अपना भला करनेके साथ सबका भला हो सकता है। चार आश्रमोंकी व्यवस्था ही यह 'टाइमटेबिल' है । वे आश्रम इस प्रकारके हैं (१) *ब्रह्मचर्याश्रम* (२) *गृहस्थाश्रम* (३) *वानप्रस्थाश्रम* और (४) *संन्यासाश्रम* । आश्रमका सरल अर्थ विश्राम लेनेका स्थान है। पर इसका गम्भीर अर्थ यह हैं कि जैसे ऋषि लोग बनमें आश्रम बनाकर रहा करते और उसमें अपने जीवन व्यतीत किया करते थे वैसे ही साधारण मनुष्यको ऋषियोंके आश्रमकी भांति पवित्रतासे अपने जीवनके चार भाग बिताने चाहियें ।

[१] इनमें पहला भाग ब्रह्मचर्याश्रम है । 'ब्रह्म' अर्थात वेदकी विद्यायें, इन्हें केवल पढ़ना ही नहीं किन्तु इनके अनुसार आचरण करना इसकाही नाम ब्रह्मचर्य है । आठसे बारह बरसकी अवस्थाके भीतर पिता यज्ञोपवीत देकर

बालकको गायत्रीका उपदेश करे, फिर वह विद्यार्थी बनकर गुरुके घर जाय, वहां अत्यन्त सादगी और पवित्रतासे रहकर कमसे कम १२ बरस तक विद्या पढ़े और गुरुकी सेवा करे। सेवा करनेका मुख्य हेतु यह है कि विद्यार्थी बालकपन हीसे नम्रता और सादगी सीखे। और ब्रह्मचारी को तो कुछ देहकष्ट भी सहना चाहिये जिससे बड़े होने पर वह दुर्बल और आराम तलब न होकर परिश्रमी और बलवान हो। उसे भिक्षा माँग कर पेट भरना चाहिये। गाँवमें फिरकर उसे भिक्षा लाना और गुरुको उसे समर्पण कर उनकी आज्ञासे उसका उपयोग करना चाहिये। भिक्षा करनेके कारण उसे लोगोंसे नम्रता पूर्वक व्यवहार करना, और अपनी जीविका स्वयं करना इत्यदि बातें ब्रह्मचारी सीख लेता था। लोग भी विद्याका आदर करते और विद्याके लिये सहायता करना सीखते थे। गुरुकी शिष्यके जीवन पर देखरेख भी रहती थी। इस आश्रममें रहना ऐसा आवश्यक था कि श्रीकृष्ण जैसे महापुरुष भी गुरुके घर आकर ऐसी ही सादगी और देहकष्टमे रहे और विद्याध्ययन किया।

(२) जिसे सारा जीवन विद्याकी सेवामें ही व्यतीत करनेकी इच्छा हो वह सदा ब्रह्मचर्याश्रममें ही रहे, जिस किसीका मन अत्यन्त वैराग्य युक्त हो वह ब्रह्मचर्याश्रममेंसे संन्यासी हो जाय, पर साधारण नियम यह है कि विद्याध्ययन समाप्त कर बीस वा चौबीस वर्षकी अवस्थामें घर आकर गृहस्था-

श्रममें प्रवेश करना चाहिये। विवाह करना और घर बनाकर रहना यही गृहस्थाश्रमका प्रयोजन है। गृहस्थाश्रमका आधार स्त्रीपर है, इस लिये स्त्रीपर प्रेम रखना यह इस आश्रमका पवित्र धर्म है। भगवान मनुका कथन है कि जिस घरमें स्त्री-पुरुष एक दूसरेसे प्रसन्न हैं वहीं कल्याण है, और जहां स्त्री प्रसन्न है वहां ईश्वर प्रसन्न है। इस आश्रमका दूसरा बड़ा धर्म 'दान' है। जिस आश्रममें धनोपार्जनका अधिकार है उसमें ही दान देनेका कर्तव्य है। गृहस्थाश्रममें अपने अपने वर्णके अनुसार हरेक मनुष्यको उद्योग कर कमाना और संसारका सुख भोगना चाहिये, पर दृष्टि सदा सदाचार और ईश्वरपर स्थिर रहनी चाहिये। इन बातोंका स्मरण दिलानेके लिये पहले हरेक घरमें 'अग्नि होत्र' रखनेका रिवाज था, और पति-पत्नी साथ बैठकर अग्निमें आहुति देते थे। पति-पत्नी दोनों ही 'दम्पति' कहलाते थे-'दम' अर्थात् घर उसके दोनों ही पति अर्थात् स्वामी थे। पुरुष स्वामी और स्त्री परिचारिका, यह 'दम्पति' का तात्पर्य नहीं। भगवान मनुका कथन है कि सब आश्रमोंमें गृहस्थाश्रम श्रेष्ठ है, क्योंकि जैसे वायुपर सब प्राणियोंके प्राणका आधार है वैसे ही गृहस्थाश्रमपर सब आश्रमोंका आधार है, जैसे छोटी बड़ी नदियां समुद्रमें जाकर आश्रय लेती हैं वैसे सभी आश्रमियोंका विश्राम गृहस्थाश्रमीके यहां है।

(३) गृहस्थाश्रमके पश्चात् वानप्रस्थाश्रम है। संसार

का खूब सुख भोगनेके पश्चात् घरका सारा प्रबन्ध पुत्रोंपर छोड़ संसारमेंसे निकल बनमें जाना और परमात्माका चिन्तन करना यही वानप्रस्थाश्रमका उद्देश्य है। ईश्वरके निरन्तर भजनके विचारसे गृहस्थ घरबार छोड़, यदि स्त्री की इच्छा हो तो उसे भी साथ लेकर बनमें जाता है। बनमें जानेका उद्देश्य यह है कि वहां फलमूल खाकर उसे जीवन निर्वाह करना पड़ता है और कुटुम्ब पर वह स्वयं भाररूप नहीं होता, पर विशेष कारण तो यह है कि वहां निरन्तर सृष्टि लीला देखते हुये प्रभुका चिन्तन ठीक होता है। पूर्व कालमें तो सूर्यवशके राजा लोग भी अपनी पत्नियों के साथ वानप्रस्थ होते थे, किन्तु कालक्रमसे देशमें राजकीय प्रबन्ध घट जानेके कारण वानप्रस्थाश्रम लुप्त हो गया। जाड़ा और धूप सहन करना, प्राणी मात्र पर दया रखना, उनके सुखमें सुखी और दुःखमें दुःखी होना, मन ईश्वरमें लगाना, और अपना समय धार्मिक पुस्तकोंके मननमें व्यतीत करनो-ये ही इस आश्रमके मुख्य धर्म हैं।

(४) वानप्रस्थाश्रममें कुछ दुनियाके साथ सम्बन्ध रहता ही है, जैसे आश्रम बनाकर रहना, स्त्रीके साथ रहकर ईश्वरका चिन्तन करना, और अतिथि आवे तो उसका सत्कार करना, तथा कितने ही व्रत होम इत्यादि करना। पर वान-प्रस्थाश्रमके पश्चात् अन्तिम संन्यासाश्रम है, इसमें समस्त कर्मों और सम्बन्धोंका 'संन्यास' अर्थात् पूर्णरीतिसे त्याग

करना पड़ता है। सन्यासीको एकबार भिक्षा मांगकर भोजन करना, निरन्तर परमात्माका चिन्तन करना, एक ही ग्राम, शहर वा बनमें पड़े न रह कर देशाटन करते रहना, और अपने पवित्र ज्ञानसे जगतका कल्याण करते रहना चाहिये। इसे क्रोध करने वालेके सामने क्रोध न करना चाहिये, और जो गाली देता हो उससे कुशल-प्रश्न पूछना चाहिये, अर्थात् उसे सदा शान्त, दयावान, क्षमाशील और परोपकारी होना चाहिये। ये ही संन्यासाश्रमके धर्म हैं।

(२४)

संस्कार (१)

गुरुजी-बालको ! यह कागज़ जो विद्या सीखनेका बड़ा साधन है किस वस्तुमें से बनता है? क्या यह तुम बतला सकते हो?

सुन्दरलाल—हां महाराज ! यह घास और चिथड़ोंमेंसे बना है।

गुरुजी—यह बिल्लोरका शीशा कैसा स्वच्छ है! इसपर सूर्यकी किरणें पड़नेसे कैसे सुन्दर रंग निकलते हैं। किन्तु क्या यह जानते हो कि यह बिल्लोर किसमेंसे बना है?

सत्यदेव-हां महाराज, मिट्टीमेंसे।

गुरूजी–ठीक। तो निकम्मी और मिट्टी जैसी वस्तुको ऐसा अद्भुत रूप देने वाले और उपयोगी बनाने वाले मनुष्य का कितना मान करना उचित है।

सत्यदेव–वह बहुत आदरणीय है।

गुरूजी–ऐसी एकाद वस्तुके सुधारनेवालेको इतना विशेष मान देनेके लिए तुम तैयार हो तो जिससे हमारा जीवन कूड़े करकटसे हीरा बन जाय उस युक्तिके ढूंढ़ निकालने वालेका तुम कितना अधिक मान न करोगे!

गुरूजी—तो यह बात लक्ष्यमें रखो कि हमारा पशुका जीवन मनुष्यका बनानेके लिए हमारे शास्त्रकारोंने कितनी ही रीतियां बनाई हैं, और उनका हमें स्मरण दिलानेके लिए कितनी ही धार्मिक क्रियायें रची हैं--जो संस्कार कहे जाते हैं। संस्कारका अर्थ सुन्दर बनाना अथवा सुधारना है। जीवनको सुन्दर बनाने वा सुधारनेकी रीतिके बतलानेवाली धार्मिक क्रियायें संस्कार कहलाती हैं। हिन्दू धर्मके अनुसार मनुष्यका जीवन जन्मसे आरम्भ कर मरण होते ही समाप्त नहीं हो जाता। इस कारण ये धार्मिक क्रियायें बालककी गर्भावस्थासे आरम्भ होती हैं, और मृत्युके बाद भी कितने ही समय तक, उसके कल्याणार्थ वे जारी रहती हैं।

अब इन संस्कारोंका कुछ सविस्तर वर्णन मैं करता हूं—बालकके जन्मसे पहले करनेके संस्कारोंमें मुख्य *सीमन्तोनयन* है। यह संस्कार बालकके जन्मसे पहले होता

है। पत्नीके केशोंमें सेंती निकालना, और गवैयोंको बुलाकर स्त्रीके समक्ष वीणा बजवाना, तथा 'गाथा' अर्थात् पूर्व कालके स्त्रीपुरुषोंके चरित्र वर्णन कराना, पुरुषको स्त्रीकी सेवा करना, स्त्रीका गर्भकाल आनन्दमें बिताना और उसे ऐसी बातें सुनाना जिनसे यशस्वी बालकके जन्म देनेकी इच्छा स्त्रीके मनमें सदा हुआ करे, येही सीमन्त संस्कारकी विधियां हैं। इसके पश्चात् *जातकर्म*-जन्मके समयका संस्कार होता है। इसमें एक दो बातें जानने योग्य हैं; बालकको घी और शहद सोनेके पात्रसे पिलाना, एक पत्थर रखना, उसपर फरसा, उसपर सोनेकी एक लकड़ी रखकर, फिर तीनोंको चलाना और उसपर बालकको रखना-यह जातकर्मकी विधि है। इसमें पत्थर तो जनसमाजके स्तम्भरूप, धर्मको दृढ़ पालने वाले ब्राह्मणका चिन्ह है, फरसा क्षत्रियका, और सोना वैश्यका। इससे यह सूचित होता है कि वह बालक तीन वर्णोंकी जनसमाजमें प्रवेश करने वाला है। फिर *मेधाजनन* संस्कार होता है। इसमें बालकके कानमें सोना रखकर, "सविता देव तुझमें मेधा अर्थात् बुद्धि रखो" यह मन्त्र पढ़ने में आता है। फिर *नामकरण, निष्क्रमण और अन्नप्राशन* संस्कार होते हैं। अर्थात् दसवें दिन माताके नहा कर शुद्ध होने पर बालकका नाम रखना, चौथे महीने उसे बाहर निकालना और सूर्य का दर्शन कराना, और छठे महीने उसे मधु,

घी और भात इकट्ठे करके खिलाना इत्यादि इन पूर्वोक्त संस्कारोंकी विधियां हैं। तत्पश्चात् तीसरे बरस चौड़ अर्थात् बाल उतरवानेका संस्कार होता है। इसीके सदृश सोलवें बरस *गोदान* अर्थात् डाढ़ी बनवानेका संस्कार होता है। इसके बदले बहुत पहले *कर्णवेध*-अर्थात् कान बिंधवानें का संस्कार कितनो ही पुस्तकों में रखा है। चौड़ और कर्णवेधके पश्चात् *उपनयनका* बड़ा संस्कार आता है। लडके को यज्ञोपवीत देना और गायत्रीका उपदेश कर गुरुके वहां पढ़ने भेजना, इसे उपनयन (गुरुके पास लेजाना) कहते हैं। उपनयन से ब्रह्मचर्याश्रमका आरम्भ होता है। इस कारण यह व्रतादेश भी कहलाता है। ब्रह्मचर्यके व्रत पालन करने की आज्ञाओं को व्रतादेश कहते हैं-जैसे दिनमें सोना नहीं, आचार्यके अधीन रह कर विद्या पढ़ना इत्यादि। यह संस्कार बहुत महत्त्वका है और इसके विषयमें विद्यार्थियों के बहुत कुछ बात जानने योग्य है इसकारण मैं इसका सविस्तर वर्णन कल करुंगा। उपनयनके पश्चात् कितनेही वेदारम्भ का जुदा संस्कार गिनाते हैं। उसके बाद *समावर्तन*—विद्या पढ़ कर घर आने का संस्कार होता है। इसमें ब्रह्मचारीका वेष उतार कर, वस्त्रालंकार, जूते, छत्री लेकर और इन्हींवस्तुओंको गुरुको भेटकर घर लौटनेकी विधि है। समावर्तनके बाद कितने ही स्नान को एक जुदी विधि करते हैं। संपूर्ण विद्या

प्राप्त करने का यह संस्कार है, और जिसने यह संस्कार किया वह '*स्नातक*' कहलाता है। सच्चे स्नातक का बड़ा मान होता था और उसके जीवनकी समाज बहुत रक्षा करती थी। स्नान के बाद *विवाह* की बड़ी विधि आती है। जैसे उपनयन ब्रह्मचर्यका वैसे विवाह गृहस्थाश्रम का स्तम्भ है। इसलिये इस विषय को भी कल मैं सविस्तर कहूंगा। समावर्तन से जुदा जैसे स्नानका संस्कार कितने ही गिनाते हैं, वैसे विवाह से जुदा *अग्निपरिग्रह* नामका संस्कार मानते हैं। इस संस्कारसे गृहस्थाश्रमकी चिन्हरूपी अग्निकी स्थापना घरमेंकी जाती है। यह अग्नि सदा यह सूचित करती है कि घरमें निरन्तर परमात्माका वास है, और इस अग्नि में पतिपत्नीको मिलकर सांझसवेरे अग्निहोत्र करने की आज्ञा है। अन्तमें *अन्त्येष्टि* नामका मरण समयका संस्कार आता है। अन्त्येष्टि का अर्थ अन्तिम समय का यज्ञ है। इसमें मनुष्यका देह अग्निद्वारा ईश्वरको समर्पण किया जाता है, इस कारण इसे यज्ञ कहना उचित है। इस संस्कार के बाद एक वर्ष तक कितनीही और क्रियाएँ करने में आतीं हैं जिनका प्रयोजन यह होता है कि जीव परलोक और पितृलोकमें सुखी रहे। और इसके बाद कुटुम्ब में प्रत्येक वर्ष मरणतिथियोंके दिन और भाद्रपदके कृष्ण पक्ष में पितरों को पिण्ड देनेका रिवाज है जो श्राद्ध अर्थात् परलोक है इस प्रकारकी श्रद्धासे किया हुआ कर्म कहलाता है॥

ये ही पूर्वोक्त हिन्दूधर्म के संस्कार वा जुदो २ धार्मिक क्रियाएं हैं॥ ये मनुष्य और पशु का भेद दरसाते हैं और मनुष्य को जंगली पशुकी दशा में से निकाल कर सुधरी हुई मनुष्य की दशामें किस रीतिसे लायाजाता है इसे बतलाते हैं। इनमें कितनेही संस्कार साधारण लोकरीतियां हैं, कितने ही कुटुम्बके स्नेह के कारण बने हैं, कितने ही हमारे जीवन के परमावश्यक कार्य्यों से घनिष्ठ संवन्ध रखते हैं, जैसे विद्या पढ़ना और गृहस्थाश्रम चलाना। इन दो विषयों पर मैं कल कुछ कहूंगा॥

(२५)

संस्कार-(२) उपनयन और विवाह।

सुखदेव—गुरुजी, आपने जो कल संस्कार गिनाये थे वे ब्राह्मणोंके ही हैं न?

गुरुजी—नहीं, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीनों वर्णोंके हैं। ये तीनों वर्ण 'द्विज'-दो बार जन्म लेने वाले कहे जाते हैं। इनका पहला जन्म माताके पेटसे और दूसरा उपनयन संस्कारसे माना जाता है।

हरिलाल—लेकिन आपने कहा था कि उपनयन संस्कार गुरुके पास विद्या पढ़नेके लिए होता है। तो वास्तवमें ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इन तीनों वर्णोंके लोग पढ़ते होंगे?

गुरुजी—हां, इतनाही नहीं किन्तु बहुत प्राचीनकालमें कन्याओंको भी यज्ञोपवीत दिया जाता था और उन्हें घर रख-कर वेद पढ़ाये जाते थे। वे सिर्फ गुरुके यहां न जाती थीं और न भिक्षा मांगती थीं, क्योंकि उस समयमें गुरुके यहां भी वेदविद्या सीखने गई हुई स्त्रियोंका उल्लेख मिलता है।

हरिलाल—गुरुजी, तो शूद्रके सिवाय सभी लोगोंको शिक्षा मिलती होगी।

गुरुजी—हां। ऐसी बहुत सी जातियां देखनेमें आती हैं जो आजकल शूद्र गिनी जाती हैं किन्तु जो असलमें क्षत्रिय या वैश्य थीं। यदि इन सबको द्विजमें गिन लें तो तुम समझ सकोगे कि हिन्दुस्तानके कितने ज्यादे लोग अनिवार्य शिक्षाका लाभ उठाते थे।

विचारचन्द्र—गुरुजी असली शूद्रको क्यों अपढ़ रखा जाता था?

गुरुजी—इस विषयकी व्याख्यामें जो कुछ मैं कहूं उसे सुनो। मूल शूद्र आर्य जन-समाजके बाहरके अनार्य लोग थे। वे जैसे जैसे आर्य लोगोंके संपर्कसे सुधरते गये वैसे वैसे वे आर्य जन-समाजमें शामिल किये गये। उनमें से कितनों हीको ब्रह्मविद्याका उपदेश मिला यह बात तुम्हारे जाननेमें है। जानश्रुति पौत्रायणका दृष्टान्त जो मैंने उस दिन सुनाया था उसे याद करो। शूद्र लोगों प्रायः वेद मन्त्रोंका ठीक ठीक उच्चारण नहीं कर सकते थे इस कारण

उन्हें वेद सिखानेमें न आते थे। और यह भी ध्यानमें रखना चाहिये कि उस समयमें वेदका सीखना अधिकार की अपेक्षा विशेषरूपका कर्त्तव्य था, इस कारण जंगली दशामेंसे हाल-हीमें निकले हुए और बिलकुल दरिद्र वर्ग पर वेद पढ़नेका फ़र्ज़ रखना कदापि उचित न होता। फिर इस बातका विचार करना चाहिये कि आर्य लोग फैलते फैलते ठेठ कन्याकुमारी तक पहुंचे इस दरमियानमें वे कितनी तरहके न्यूनाधिक जंगलीपन रखनेवाले अनार्य लोगोंके साथ संबन्धमें आये होंगे, इन सबके सिरपर वेदविद्याके पढ़नेका भार डालना क्या यह संभव था! किन्तु कालक्रमसे वेदकी संस्कृत भाषामेंसे लोकको संस्कृत भाषा बनी, और उसके साथ ही साथ शूद्र लोग भी अधिक आर्य बनते गये-इस लिये इस नई लोकभाषाके द्वारा वेदकी समस्त विद्या शूद्रोंको भी पढ़ाई जाने लगी। शूद्रके लिये शिक्षाका निषेध है यह मानना अनुचित है॥

सब लड़के यह भली भाँति समझ गये कि भारतमें शिक्षाका प्रचार बहुत व्यापक था। इस प्रसङ्गपर विचारके बाद उसदिनका काम शुरु हुआ॥

गुरुजी—अब हम *उपनयन* संस्कारकी बात शुरु करें। उपनयनका नियम यह है कि गर्भसे वा जन्मसे आठवें वा दसवें वर्षमें ब्राह्मणका उपनयन होना चाहिये, और ग्यारहवें वर्षमें वैश्यका उपनयन होना चाहिये। ब्राह्मणसे विद्योन्नतिकी सबसे

अधिक आशा की जाती है इस लिये उसका उपनयन-काल सबसे पहले आरम्भ होता है, और इसी रीतिसे वैश्यका सबसे देरमें। सोलहवें वर्ष तक ब्राह्मणके लिये उपनयनकालकी अन्तिम अवधि है पर यदि इस अन्तिम अवधि तक यह संस्कार करनेमें न आवे तो वह 'पतित-सावित्रीक' हो जाता है अर्थात् उपनयनके समयमें जो सविताके मन्त्रका उपदेश किया जाता है उसका अधिकार उसे नहीं रहता। उपनयन कर्मकी विधि इस प्रकारकी है—सबसे पहले सभी मंगल कार्य्योंमें पुण्याहवाचन करना चाहिये इसके अनुसार लड़केकी हजामत बनवाकर और स्नानपूर्वक नये वस्त्र आभूषण पहिनाकर, अग्निमें होमकर—अग्निके समक्ष उसे यज्ञोपवीत पहिनाकर गायत्री मन्त्रका उपदेश करना चाहिये। उस समय जो वेष उस बालकको धारण करना पड़ता है उसमें ओढ़नेके लिये एक मृगचर्म, दूसरी मेखला और तीसरा दण्ड ये हुआ करते हैं। और ये वर्णके अनुसार जुदी जुदी तरहके होते हैं। इन तीन वस्तुओंके धारण करनेका मतलब यह है कि बालकको शरीरकी रक्षाके साथ कमर कसकर और मन, वाणी और शरीरको बसमें रखकर विद्याध्ययन करना चाहिये। इसके पश्चात् बालक और आचार्यके मध्यमें शेष क्रियायें होती हैं। ये बहुत ही मनोहर होती हैं। अग्निकी उत्तर दिशा में आचार्य पूर्वाभिमुख होकर बैठता है और उसके सामने लड़का बैठता है। आचार्य अपनी और बालककी चुल्लुमें पानी भरकर

और उसे ऊपर रखकर, इसमेंसे—सविताका मन्त्र पढ़ते हुए—नीचे बालककी चुल्लूमें जलकी बूंदें गिराता है। इसका तात्पर्य यह है कि इस रीतिसे वह अपनी सारी विद्या धीरे २ बालकको देगा। फिर आचार्य बालकका हाथ पकड़कर कहता है कि "सविताने तेरा हाथ पकड़ा है, अग्नि तेरा आचार्य है"। इसका यह अभिप्राय है कि आचार्य बालकको केवल अपनी विद्या ही नहीं देता किन्तु इसके साथ उसका हाथ भी पकड़ता है अर्थात् उसे अपने आश्रयमें लेकर उसे दुनियाके काम करनेमें सहायता भी देता है। इस दुनियाके कामके लिये यथोचित सहायता सविता और अग्निरूप परमात्माके पाससे ही मिल सकती है यही उक्त मन्त्रका तात्पर्य है। फिर आचार्य बालकको सूर्यके सम्मुख खड़ाकर उसे उनके दर्शन कराता है, क्योंकि सूर्यदेव सारे प्रकाश एवं ज्ञानके देवता हैं, और वह इस भांति प्रार्थना करता है कि "हे देव! सविता! यह तुम्हारा ब्रह्मचारी है इसकी आप रक्षा कीजिये" फिर बालक अग्नि आदिक देवताओंसे बुद्धि बल आदि गुणों की याचना करता है, और आचार्य भी ब्रह्मचारीके हृदयपर हाथ रखकर कहता है कि मैं जिन सदाचारके नियमोंका पालन करता हूं उनमें तेरा हृदय हो, मेरे चित्तका अनुसरण तेरा चित्त करे, मेरी वाणीके अनुरूप तेरी वाणी हो, विद्याके देवता बृहस्पति तुझे मेरे साथ रखें"।

तत्पश्चात् बारह वर्ष अथवा विद्या पूरी होनेतक ब्रह्मचर्य

पालनकर विद्यार्थी गुरुके घर रहता है। पढ़नेके विषयोंमें पहले वेद, वेदसे संबन्ध रखनेवाले यज्ञके रहस्य और विधिके ग्रन्थ, 'गाथा' अर्थात् महापुरुष संबन्धी काव्य, 'नाराशंसी' अर्थात् महापुरुषोंकी प्रशंसाके कवित्त, इतिहास अर्थात् सच्ची घटनाओंका और बड़े पुरुषोंके चरित्रका यथार्थ वर्णन और 'पुराण' सृष्टिसे आरम्भ कर विविध युगोंकी कथायें-इतने विषयोंमें सामान्य रूपसे शिक्षा हुआ करती थी जिनके द्वारा विद्यार्थीको ईश्वर और धर्मका ज्ञान होता था तथा उसका हृदय उच्च और पराक्रमी बनता था। इन विषयोंके कितने ही अंश तो ब्राह्मण ही मुख्यतया पढ़ते होंगे, कितने ही विषयों पर क्षत्रिय और कितनों ही पर वैश्य विशेष ध्यान देते होंगे। इनके सिवाय धनुर्विद्या, शिल्पविद्या इत्यादि जुदे जुदे वर्णोंके लिये कितने ही विशेष विषय भी होते थे।

विद्याध्ययनके समाप्त होनेपर समावर्तन कर अर्थात् घर वापिस आकर विवाह करना चाहिये। विवाहकी विधिमें कन्या-के माता पिताको वरपक्षसे कुछ भी न लेना चाहिये, यदि वे कुछ लें तो कन्या विक्रयका (लड़की बेचनेका) पाप उन्हें लगता है। यह हमारे आर्यधर्मका बड़ा नियम है। कुटुम्ब पापी वा रोगी मनुष्योंका न हो यह पहले देखलेना आवश्यक है। विद्वान ही को कन्या देना यह दूसरा नियम है और कन्यामें बुद्धि रूप शील (चरित्र) और लक्षण इत्यादि गुण होने चाहियें। विवाहकी विधिमें निम्नलिखित बातें हुआ करती हैं-ब्रह्मचर्य

पूर्वक विद्याध्ययनकर वर आता है और कन्याके मा बापसे कन्याके लिये प्रार्थना करता है। कन्याके माबाप उसका मधुपर्कसे (मधु घी आदि अतिथि-सत्कारकी वस्तु) सत्कार करते हैं। फिर वे गार्हपत्य-घरको अधिदेवतारूपी अग्निको स्थापनाकर वरकी दाहिनी ओर कन्याका बिठाते हैं। फिर वर कन्याका हाथ ग्रहणकर कहता है—मैं तेरा हाथ पकड़ता हूं, तुझे अच्छी सन्तान हो और मेरे साथ तू भी दीर्घायु हो, अर्यमा, सविता और पुरन्धि इन देवताओंने तुझे गृहस्थाश्रम चलानेके लिये मुझे दिया है, तेरी शुभदृष्टि हो, पतिको तुझसे कोई हानि न हो, पशुओंका तुझसे कल्याण हो। तू सुन्दर मनवाली और सुन्दर तेजवाली हो, तुझे जीवित पुत्र हों और वे वीर निकलें, तुझसे सबका सुख हो, मनुष्य और पशुओंका तुझसे कल्याण हो"।

फिर वर कन्यासे अग्निमें होम कराता है उस समय वह कहती है "कि मेरे पति दीर्घायु हों और मेरे सगे संबन्धी सुखी हों" फिर अग्निके पास 'सप्तपदी' अर्थात् वर कन्याको साथ साथ चलनेकी विधि होती है इसमें अन्न बल धन सुख पशु लक्ष्मी और विद्या तेरे साथ आवें इस प्रकार वर क्रमसे एक एक वस्तु मांगता है और सातवां पैर रखते ही वह कहता है कि—हम दोनों अब सात पैर चलनेवाले मित्र हुये, मेरी तेरी मित्रता हो, मैं तेरी मैत्रीसे छूटूं नहीं और मेरी मैत्रीसे तू न छूटे"। पत्नी पतिके घर आया करती है। असलमें तो

गार्हपत्य अग्निको साथ लेकर जाने और उसे पतिके घरमें स्थापन करनेकी विधि थी इसके पश्चात् वहां ध्रुव और अरुन्धती इन दोनों तारोंके दर्शन करनेका नियम है। इसका तात्पर्य यह है कि महर्षि वसिष्ठकी पत्नी अरुन्धती (परम पतिव्रता) और ध्रुव (स्थिरताकी मूर्ति, इन दोनोंके दर्शनकर पतिपत्नीको परस्पर इसी प्रकार लोकमें प्रेम और स्थिरता के गुण प्राप्त करने चाहियें। इसी प्रकार पतिपत्नीका संबन्ध कैसा होना चाहिये इस बातका स्मरण करानेवाली अनेक क्रियायें विवाहमें होती हैं।

(२६)

पंच महायज्ञ।

वसन्त—गुरुजी, आपने कल उपनयन और विवाहका जो वर्णन किया था वह हमें बहुत ही अच्छा लगा। इन क्रियाओंमेंसे हम दो एक सारकी बातें समझे हैं जो कदाचित् सत्य हों—एक तो गुरुके साथ विद्यार्थीको एकमन होकर अध्ययन करना, और दूसरी, पति-पत्नीको एक दूसरेका मित्र, एक घरके दो इकट्ठे मालिक होकर रहना, तथा गृहस्थाश्रमका सुख भोगना।

गुरुजी—ठीक है। लेकिन गृहस्थाश्रमकी बाबत एक बात विशेष रूपसे समझनेकी जरूरत है। वह यह है कि

गृहस्थाश्रम केवल सुख भोगनेके लिये नहीं बल्कि अग्निकी साक्षीमें अर्थात् ईश्वरको साक्षी समझकर गृहस्थाश्रमके कर्तव्य करनेके लिये है। उन कर्तव्योंका स्मरण रखनेके लिये हरेक गृहस्थाश्रमीको "पंच महायज्ञ" करनेकी आज्ञा है। ये यज्ञ बड़े महत्वके हैं, और यद्यपि इनकी क्रियाएं बहुत सरल हैं तौ भी गृहस्थाश्रममें इनका महत्व इतना अधिक है कि ये महायज्ञ कहलाते हैं। वे महायज्ञ ये हैं–(१) देवयज्ञ, (२) पितृयज्ञ, (३) ब्रह्मयज्ञ, (४) भूतयज्ञ, और (५) मनुष्य-यज्ञ

(१) देवयज्ञः—अर्थात् देवताका पूजन। इस पूजनमें प्राचीनसे प्राचीन अग्नि पूजा और सूर्य पूजा है। अग्नि पूजा में अग्निकी स्तुतिकर अग्निमें आहुति दी जाती है, और सूर्य पूजा हमारी सन्ध्या है। प्रातःकाल, मध्याह्न और सायंकाल इन तीनों समय सन्ध्या करनेकी आज्ञा है। इसमें स्नानकर धुला वस्त्र पहिन, पूर्व दिशामें बैठ पहले भस्म लगाना चाहिये। फिर शिखा बांध, शरीरके जुदे जुदे अवयवों और इन्द्रियोंमें बल और प्रभुके बासकी परमात्मासे प्रार्थनाकी जाती है, तथा प्राणायामसे (श्वासोच्छ्वासके रोकनेसे) प्राण और आत्मा वशमें किये जाते हैं। फिर सन्ध्याका मुख्य काम शुरू होता है। उसमें पहले मार्जन फिर अघमर्षण, फिर अर्घ प्रदान, फिर उपस्थान और अन्तमें गायत्रीजप होता है। देहपर जलके छींटे डालकर देहकी शुद्धि करना मार्जन कहलाता है। फिर अघमर्षण अर्थात्

पापोंके क्षमा करानेकी विधिमें जल सूंघकर फेंक दिया जाता है। यह विधि इस लिये है कि एकबार सूंघा हुआ पाप यदि सचमुच फेंक दिया जाय तो उसकी क्षमा ईश्वरसे अवश्य मिलती है। फिर अर्घ प्रदानमें गायत्री मंत्र पढ़ सूर्यको जलकी तीन अंजलियां दी जाती हैं। तत्पश्चात् सूर्यनारायणकी सेवामें मानों तत्पर हाथ सूर्यको दिखाकर स्तुति की जाती है। इस स्तुतिका मुख्य अभिप्राय यह है कि सूर्य जो सब देवताओंका नेत्र हैं अपने तेजसे आकाश, पृथ्वी और अन्तरिक्ष परिपूर्ण कर रहा है, और स्थावरजंगम सभी पदार्थोंकी वह आत्मा है। अन्तमें गायत्री मन्त्रका जप किया जाता है। इसमें पृथ्वी (भूः), अन्तरिक्ष (भुवः) और स्वर्ग (स्वः) इस प्रकार तीनों लोकोंका स्मरण कर, फिर यह गायत्री यथाशक्ति १०८ अथवा अधिक बार स्थिर चित्तसे जपनी चाहिये—" सविता देवका यह तेज—जो प्रेमसे प्रार्थना करने योग्य है—उसका हम ध्यान करते हैं—जो देव हमारी बुद्धियोंको प्रेरित करे॥ "

मैंने तुम्हें एक बार कहा था कि वेदके समयकी अग्नि-पूजा आजकलकी शिवपूजामें परिणत हो गई है—अग्निकी वेदी जलाधारी है, उसकी ज्वाला शिवलिङ्ग है, ज्वालाका अन्तर्गत धुआं शिवकी जटा, है, अग्निमें होम करनेकी घीकी धार शिवलिङ्गपर जलका अभिषेक है, और अग्निहीको 'महान देव' कहकर 'वृषभ' की उपमा दी

गई है जिसके कारण महादेवके सामने नन्दीकी स्थापना की जाती है, और लोग शिवजीके प्रसाद रूपसे भस्म लगाते हैं। इस प्रकार अग्निके स्थानमें शिवजीकी पूजाका आरम्भ हुआ। और इसी प्रकार सूर्यके स्थानमें विष्णुकी पूजा होने लगी। विष्णु तो पहले होसे एक आदित्य रूपसे प्रसिद्ध थे इस कारण विष्णु सूर्यके स्थानापन्न सरल रीतिसे होगये। रक्षा करना भगवान विष्णुका काम है इस कारण उनके अवतार हुए, और उनकी भक्तिसे ही राम कृष्ण आदिकी उपासना और सम्प्रदाय चले। जो कट्टर वैष्णव वा शैव होते हैं वे या तो केवल विष्णुकी—राम अथवा कृष्ण-की मूर्तिकी—वा केवल शिव, पार्वती और उनके पुत्र गणपति हीकी पूजा किया करते हैं। किन्तु हिन्दुओंका बड़ा वर्ग जो एक ही सम्प्रदायका अनुयायी नहीं है, शिव और विष्णु दोनोंको एक मानता है, और शिव, विष्णु, सूर्य, गणपति और अम्बिका (माता) इस 'पंचायतन' को पूजा करता है। ईश्वर एक ही है किन्तु वह पांच जगह प्रकट होनेके कारण उसे पांच जुदे जुदे नाम प्राप्त होते हैं। इस कारण वे पंच देव न कहलाकर 'पंच आयतन' कहे जाते हैं। हरेएक ब्राह्मण को सन्ध्या करनेमें सूर्यरूपसे परमेश्वरका ध्यान करना पड़ता है इस लिये पंचायतनमें एक तो सूर्य हैं, दूसरे दो शिव और विष्णु हैं— 'शिव' यह सुखमय मंगलमय परमेश्वर-का नाम है, और 'विष्णु' यह उस सर्वव्यापक प्रभुका नाम

है जो इस सृष्टिकी रक्षाके लिये अवतार लेते हैं। चौथे 'गणपति' हैं जो सब विघ्नोंका नाश करते हैं, और विद्याके देवता हैं, और पांचवीं 'अम्बिका' अर्थात् माताजी हैं। ये परमेश्वरकी शक्ति हैं, उनमेंसे यह सारा जगत उत्पन्न हुआ है। अतएव सब मिलकर कहो कि जगतके माता पिता पार्वती परमेश्वरको हमारा नमस्कार है —*जगतः पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ* । (सब मिलकर एक स्वरसे कहते हैं)

आजकल बहुतसे प्राचीन पन्थके हिन्दुओंमें भी यह एक ही देवयज्ञ रहा है, लेकिन इसके सिवाय ब्रह्मयज्ञ, पितृयज्ञ आदि भी कुछ कम महत्वके नहीं।

ब्रह्मयज्ञ—वेद पढ़ना और पढ़ाना ही ब्रह्मयज्ञ है। इसमें वेदकी सामान्य रचनाका और उनके कितने ही मन्त्रोंका नित्य स्मरण करनेमें आता है॥

पितृ यज्ञ—इसमें स्वर्गस्थ माता पिता और दूसरे सगे संबंधियोंका स्मरण कर उन्हें जलकी अंजलियां दी जाया करती हैं। इसे 'तर्पण' कहते हैं इसी रीतिसे देवता और ऋषियोंके जुदे जुदे नाम लेकर भी तर्पण किया जाता है। अपने पूर्वजों और बड़े ऋषियोंको देववत् समझकर उनका मान करना और सदा स्मरण रखना ही इस विधिका मुख्य हेतु है॥

भूतयज्ञ—प्राणी मात्रका भला चाहकर उन्हें भी अपने

अन्नमेंसे भाग देना यह भूतयज्ञ है। गृहस्थ मनुष्य 'वैश्व-देवमें' ठेठ चींटी पर्यन्तके प्राणियोंके लिये अग्निके सामने भातका बलिदान रखता है और फिर घरके बाहर आकर पशु पक्षी और कीट अर्थात् प्राणिमात्रको रोटी भात आदि डालता है॥

मनुष्य यज्ञ—यह अतिथि सत्कार है। गृहस्थको हमेशा भोजनके पहले यदि कोई अतिथि आया हो तो उसका सत्कार कर और उसको खिलाकर स्वयं खाना चाहिये।

इस अतिथि सत्कारको साधारण मिहमानदारी न समझना चाहिये। कोई भी भूखा प्यासा अन्न जल मांगता हुआ आवे उसे उन वस्तुओंको देना ही मनुष्य-यज्ञमें गिना जाता है। बालको! तुमने रन्तिदेव राजाकी कथा सुनी है?

कान्तिलाल—हमने नहीं सुनी। कृपया कहिये।

गुरुजी—तो सुनो; बात तो छोटी है लेकिन खूब याद रखने योग्य है। पूर्व कालमें रन्तिदेव नामका एक राजा था। उसने बड़े २ यज्ञकर उन यज्ञोंमें अपना सब धन ब्राह्मणोंको दे डाला था। एक दिन वैश्वदेव कर, कोई अतिथि आया है यह देखने वह बाहर गया और वहां उसने चिल्लाकर पूछा कि कोई भूखा प्यासा है। वहां एक चाण्डाल पड़ा हुआ था, वह खड़ा होकर कांपता लथड़ता राजाके पास आया और कुछ खानेको मांगा। राजाके घरमें थोड़ा ही खानेको रहा था तौभी उसे उस भिखारीको दे दिया और स्वयं अन्न बिना खाये घरमें

थोड़ा पानी था उसेही पीकर दिन काटनेका विचार किया। इधर भिखारीने रोटी खाकर पानी मांगा। वह भी उसने दे दिया। अब अपने प्राण धारण करनेका भी साधन न रहा। वे भिखारी जो चाण्डालके रूपमें आये हुये स्वयं धर्मराज थे। उसके सामने प्रकट हुये और राजासे कहा राजा, मैं तेरा परोपकार देख बहुत प्रसन्न हूं—मांग, जो मांगेगा वही वरदान दूंगा इस समयका राजाका दिया हुआ उत्तर सुननेके योग्य है। राजाने कहा ? धर्मराज! जो तुम मुझपर प्रसन्न हुये हो और वरदान मांगनेको कहते हो तो मैं इतनी बात मांगता हूं कि मुझे स्वर्ग न चाहिये, मोक्ष न चाहिये, मुझे तो इतना चाहिये कि जो जो प्राणी दुःखी हों उनके अन्तरमें रहकर उनका दुःख मैं भोगूं।"

धर्मशिक्षणकी सारी क्लास इस मनोहर कथाको सुन स्तब्ध होगई। फिर उनमेंसे एक बालकने पूछा।

रमाकान्त—गुरुजी धर्मराजने चाण्डालका वेष किस रीतिसे लिया होगा?

गुरुजी—धर्मराजने चाण्डालका वेष धारण किया और अन्न पानी मांगा इसका अर्थ यही है कि इस चाण्डालने जो अन्न पानी मांगा वह धर्म ही ने मांगा था। धर्म ही में कहता हूं कि नीचसे नीच जातिका मनुष्य भी यदि भूखा प्यासा हो और हमारे पास अन्न जल मांगने आवे तो हमें उसे देना ही चाहिये अर्थात् देना ही हमारा धर्म है॥

(२७)

श्राद्ध

भाद्रपद मासका यह कृष्णपक्ष है, इसमें हिन्दू गृहस्थ श्राद्ध किया करते हैं। कल मातृनवमीकी छुट्टी है इस सूचनाका पत्र पाठशालामें घुमाया जा रहा था, इस कारण प्रसंग देख गुरुजीने श्राद्धके विषयमें बात छेड़ दी।

गुरुजी—कल तुम्हारी मातृनवमीकी छुट्टी है। छुट्टीमें तुम क्या करोगे?

उमापति—गुरुजी, हम पिछले पाठ सब देख जायंगे।

रमाकान्त—महाराज हम तो कल खेलेंगे।

चन्द्रधर—कल तो साहब, हमारे यहां श्राद्ध होगा जिसमें हम सब जैमेंगे।

गुरुजी—क्या तुम श्राद्धका अर्थ समझते हो?

बालक—श्राद्धका अर्थ सरस भोजन करना है।

गुरुजी—(हंसकर) श्राद्धका अर्थ जैमना नहीं। हमारे बड़े प्राचीन रिवाजोंके गूढ़ अर्थको तो लोग भूल गये हैं और उनके केवल बाहरी आडम्बर मात्रका अनुसरण करने लगे हैं। श्राद्धके विषयमें भी ऐसा ही हुआ है। हम जैसे देवताओंकी पूजा करते हैं उसी रीतिसे हम अपने पूर्वजोंका, स्वर्गस्थ मा बाप और दूसरे सगे संबन्धियोंका स्मरणकर, मानो वे जीवित ही हैं इस भाँति विचार कर, उनका पूजन करते हैं।

इसका ही नाम श्राद्ध है। जो श्रद्धासे किया जाय वही श्राद्ध कहलाता हैं। श्रद्धाका अर्थ विश्वास है। यदि वे स्वर्ग में भी हैं तौभी हमें भूले नहीं, और इस लिये हमें भी उन्हें भूलना न चाहिये-यही श्राद्धका तात्पर्य है। अतएव हमारे शास्त्रकारोंने उनके स्मरण करने के लिये कुछ दिन नियत कर दिये हैं। असलमें तो हरेक महीनेमें श्राद्ध करनेका रिवाज था किन्तु इस मासिक श्राद्धके कुछ दुष्कर होनेके कारण, अब केवल वर्षमें एक बार मरणतिथिके दिन तथा भाद्रपदके पितृपक्षमें तिथिके अनुसार एक दिन श्राद्ध करनेका रिवाज हो गया है।

शंकर—गुरुजी! यह रिवाज बहुत अच्छा है, इससे हम अपने सगे संबंधियोंको कभी न भूलेंगे।

गुरुजी—हां, और उन्हें जो अच्छा न लगे उस कामके करनेसे हमे शरमाना चाहिये, क्योंकि वे हमेशा हमें देखते रहते हैं, हमारे शुभ कर्मोंसे प्रसन्न होते हैं और खोटे कामोंसे दुःखी होते हैं। अपने पूर्वजोंपर भक्ति रखना और उन्हें स्मरणकर उनके सदृश पराक्रमी होना, तथा जो हमारे प्राचीन पूर्वजों में बड़े २ ऋषि, तपस्वी और ग्रन्थकार हो गये हैं उनके नामका भी स्मरण करना इत्यादि हमारे शास्त्रकी विधि है। इसलिये नित्य देव-तर्पणके साथ साथ ऋषि-तर्पण और पितृ-तर्पण करनेका आदेश है। यही बात मैं पहले पंचमहायज्ञमें पितृयज्ञके विषयमें कह चुका हुं। तर्पणका अर्थ 'तृप्त

करना वा प्रसन्न करना है। जिससे पितृलोग प्रसन्न हों वैसा ही आचरण करना यही तर्पणका गूढ़ अर्थ है। यह तर्पण जलकी अंजलि देकर किया जाता है। अपने पूर्वजोंसे हम अपना संबन्ध सदा अविच्छिन्न रखें यही इस क्रियाका प्रयोजन है।

उमापति--महाराज, क्या ऐसी रिवाज पृथ्वीकी दूसरी प्रजाओंमें भी हैं?

गुरुजी--हां, ईरान, ग्रीस, रोम आदि अनेक प्राचीन प्रजाओंमें यह रिवाज था। यह पारसियोंमें अबतक है, र औ जापानमें भी है। कुछ समय पहले रूस और जापानका युद्ध हुआ था उसमें जापानवासी यह माना करते थे कि उनके बाप दादे अभी जीवित हैं और उनकी तरफसे युद्धमें लड़ रहेहैं।

(२८)

व्रत, उत्सव, और यात्रा।

कुछ दिन हुए प्रयागमें कुम्भमेला होनेका समाचार प्रकाशित हुआ था। अभी संयुक्त प्रान्तमें महाशिवरात्रिके उत्सव पर काशीविश्वेश्वरके दर्शनार्थ आनेवाले लोगोंके लिये ख़ास ट्रेनें चलीं थी यह समाचार पढ़ा है। होलीके त्यौहारके समीप होनेके कारण, 'होली संशोधक मण्डली'

की ओरसे किये जाने वाले कामका समाचार पत्रोंमें आज ही प्रकाशित हुआ है। अतएव गुरुजीने हिन्दूधर्मके व्रत, उत्सव और यात्रा सम्बन्धी लड़कोंको कुछ परिचय देनेका विचार किया। इतनेमें बसन्त पूछ बैठा—गुरूजी, आपने जो महायज्ञ बतलाये उनके सिवाय दूसरे महायज्ञ भी हमने रामायण और महाभारतमें पढ़े हैं। रामचन्द्रजीने अश्वमेध यज्ञ किया था और युधिष्ठिरने राजसूय किया था। क्या वे सब महायज्ञ नहीं?

बहुत लोग इसमें भाग लेते हैं और ये बहुत दिन तक चलते हैं इस कारण ये महायज्ञ कहे जाते हैं। लेकिन ईश्वर की भक्ति करना, विद्या पढ़ना, पूर्वजोंका स्मरण रखना, भूखे प्यासोंको अन्न जल देना, और प्राणिमात्रके प्रति दया रखना अथवा उन्हें पालना—ये पांच तो हरेक आदमीको करने ही चाहियें, और वे बहुत ही आवश्यक हैं, अतएव महा-यज्ञ हैं—

सुशीलाल—गुरुजी, क्या इन दो तरहके यज्ञोंके सिवाय तीसरी तरहके कुछ यज्ञ होते हैं?

गुरुजी—हां, हरेक ऋतुमें करनेके यज्ञ हैं।

सत्यदेव—अब तो इन्हें कोई करता नहीं!

गुरुजी—करते हैं। जैसे अग्निपूजामेंसे शिवपूजा निकली और इसी प्रकार वैदिक धर्मके बाहरी आकारमें दूसरे बहुत फेरफार हुए, वैसे ही इस धर्मके प्राचीन यज्ञोंने

भी नवीनरूप धारण कर लिया है। तुमने नवरात्रके दिनोंमें जौ बुवाये थे और माताके आगे होम किया था। यह उस समयका यज्ञ था जब वर्षा ऋतु पूरी हुई थी और शरद् ऋतुका आरंभ हुआ था। इसी प्रकार अब थोड़े दिन बाद तुम होली जलाकर उसमें नया आमका मौर, गेहूंकी बालें आदि होम करोगे, यह क्या है? यह बसन्त ऋतुका यज्ञ है। इन सब यज्ञोंका यह तात्पर्य है कि प्रभु-कृपासे इस जगत्‌में हमें जो जो अच्छे पदार्थ मिलते हैं उन्हें प्रभुको समर्पण कर हमें काममें लेना उचित है। इन यज्ञोंको यदि हम सब मिलकर करें तो ये उत्सव बन जाते हैं। हमारे सब उत्सव इस रीतिसे अमुक ऋतुके यज्ञमेंसे अथवा अमुक देवताके यज्ञमेंसे उत्पन्न हुए हैं। इसके सिवाय यज्ञ करनेवालेको पवित्रताके और इन्द्रिय और मनको बसमें करनेके कितने ही नियम पालन करने होते हैं। उन नियमोंको 'व्रत' कहते हैं, जैसे अमुक समय तक अन्न न खाना—केवल फल मात्र खाकर रहना—जिससे यह स्थूल शरीर बसमें रहे और इन्द्रियें और मन पवित्रताके मार्गमें चलें। सोम प्रदोष, एकादशी, शिवरात्रि आदि उपवास, मन और इन्द्रियोंको बसमें कर ईश्वरका भजन और पूजन करनेके लिए ही होते हैं। हिन्दू धर्मकी पुस्तकों और लोकरूढ़िमें तीर्थयात्राकी बड़ी महिमा है। इस प्रकारकी ईश्वर-भक्ति बड़े उत्कट प्रेमसे करनी चाहिये जहां नदी, पर्वत, बन आदि स्थलोंमें प्रभुकी ललित

लीलायें विशेषरूपसे दृष्टिगोचर हों उन स्थलोंमें जाना शास्त्र में कहा गया है। हिमालयसे गंगाजी निकलती हैं, आगे चलकर गंगाजीके साथ यमुना मिलती हैं. और आगे चलकर गंगा-यमुनाका मिला हुआ जल लहराता लहराता एक स्थल पर दिशा बदलता है, और उसके साथ दूसरी छोटी नदियां मिलती हैं। ये दृश्य बहुत भव्य और रमणीक होते हैं। इस कारण गंगाद्वार, बदरिकाश्रम, हरिद्वार, प्रयाग, काशी आदि यात्राके स्थान बने हैं। इसी प्रकार जहां पर, राम, कृष्ण, व्यास आदि महापुरुष बसे कहे जाते हैं वे स्थल भी इन महापुरुषोंके सम्बन्धसे बड़ी महिमाके गिने जाते हैं, जैसे मथुरा, द्वारका आदि नगरियां तथा नर्मदा, गोदावरी आदि नदियोंके किनारोंके तीर्थ स्थान।

(२६)

सामान्य धर्म।

पहले दिन गुरूजीने यह कहा था कि कल धर्मशिक्षणकी कक्षा पाठशालाके मकानमें होगी। तदनुसार दूसरे दिन स्कूल खुलते ही विद्यार्थिगण क्या देखते हैं कि धर्मशिक्षणके विशाल भवनके द्वार पर और अन्दरकी दीवारों पर सुन्दर शिलालेख लग रहे हैं। उनमें सीधे, मरोड़दार तरह तरहके रंगबिरंगे और सुन्दर बेलसे अलंकृत अक्षरोंमें हिन्दू धर्मकी

पुस्तकोंमेंसे अच्छे अच्छे वचन (हिन्दी भाषानुवाद सहित) उद्धृत थे। प्रविष्ट होते ही ड्योढ़ीकी मिहराब पर यह लिखा था:—

यतो धर्मस्ततो जयः।

'जहां धर्म वहां जय' यह बड़े सुनहरी अक्षरोंमें लिखा हुआ था। और उसके नीचे इस तरहका लेख था:—

धर्मं चरत माऽधर्मं सत्यं वदत नानृतम्।
दीर्घं पश्यत मा ह्रस्वं परं पश्यत माऽपरम्॥

धर्म करो, अधर्म मत करो, सत्य बोलो, असत्य न बोलो, दीर्घ दृष्टि रखो, संकुचित दृष्टि न रखो; दृष्टि ऊंची रखो, नीची न रखो।

फिर अन्दर आते हुए सामनेकी भीत पर यह लिखा था—

सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः।

सच बोल, धर्म कर, अपने विद्याभ्यासमें त्रुटि न कर।

अहिंसा सत्यमस्तेयमकामक्रोधलोभता।
भूतप्रियहितेहा धर्मोऽयं सार्ववर्णिकः॥

हिंसा न करना, सत्य बोलना, चोरी न करना, काम क्रोध लोभ मोह न करना, और प्राणिमात्रके प्रिय और हितकी इच्छा करना, यह सब वर्णोंका धर्म है।

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः
एतं सामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्ये ऽब्रवीन्मनुः॥

हिंसा न करना, सत्य बोलना, चोरी न करना, पवित्रता रखना, इन्द्रियोंको वशमें करना यह चारो वर्णों का साधारण धर्म मनुजीने बतलाया है।

इसके सामने दीवारपर एक बड़ा शिलालेख है—

विद्वद्‌भिः सेवितः सद्‌भि नित्यमद्वेषरागिभिः ।
हृदयेनाभ्यनुज्ञातो यो धर्मस्तं निबोधत ॥

विद्वान जो सत्पुरुष हों और सदा राग द्वेषसे मुक्त हों वे जिसकी सेवा करते हों और जो हृदयसे पसन्द हुआ हो उसे तुम धर्म समझो ॥

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम् ।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ॥

धर्मका सार सुनो और सुनकर हृदयमें धारण करो। वह यह है कि जो हमें अपने लिये अनुकूल न हो वह दूसरोंके लिये न करना चाहिये।

श्लोकार्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रन्थकोटिभिः ।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम् ॥

आधे श्लोकमें मैं तुम्हें वह बात कहूंगा जो करोड़ों ग्रन्थों में कही गयी है। और वह यह है कि दूसरे पर उपकार करना पुण्य है, और दूसरेको पीड़ा देना पाप है।

दूसरी दो दीवारों पर आमने सामने दो लेख थे। एकमें यह खुदा हुआ था—

दैवी सम्पद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता ॥

दैवी संपत् (गुण-वृत्ति) मोक्ष देती है, आसुरी संपत् बन्ध उत्पन्न करती है। और इसके सामने लड़कोंकी सदा दृष्टिमें रहे इस प्रकारसे एक निम्न लिखित श्लोक गहरे रंगसे अंकित था—

आदित्यचन्द्रावनिलोऽनलश्च द्यौ भूमिरापो हृदयं यमश्च ।

अहश्च रात्रिश्च उभे च सन्ध्ये धर्मोऽपि जानाति नरस्य वृत्तम् ॥

सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि, आकाश, पृथ्वी, जल, हृदय, नियन्ता ईश्वर, दिन, रात्रि, प्रभात और सायंकाल और धर्म स्वयं ही इस मनुष्यके आचरणको जानता है।

बालक इन सबको पढ़ते हैं। इतनेमें कुछ देर बाद पाठशालाका घंटा बजा और धर्म शिक्षणकी क्लास आकर इकट्ठी हुई। गुरुजी आये, सबने नमस्कार किया और शिक्षणका काम शुरू हुआ।

गुरुजी—बालको, क्या तुम्हें सजाया हुआ यह भवन अच्छा लगता है ?

बसन्त—जी हां, बहुत सुन्दर लगता है। हमेशा इस प्रकारसे ही रखा जाय तो कितना अच्छा हो।

गुरुजी—अच्छा, ऐसा ही रखेंगे, पर साथ ही साथ तुम भी शिलापर खुदे हुए वाक्योंको अपने मनमें अङ्कित रखना।

रमाकान्त—गुरुजी, इन्हें हम बार बार पढ़ेंगे और याद

रखेंगे। हमें ये बहुत पसन्द हैं। किसने इन शिलाओंपर श्लोक खोदकर लिखे हैं?

गुरुजी—मुरारी नामक एक चित्रकारने इन्हें लिखा है।

विचारचन्द्र—गुरुजी, मैं उसे जानता हूं। मेरे घरसे वह थोड़ी ही दूर रहता है। वह बहुत अच्छा आदमी हैं।

गुरुजी—वह मनुष्य बहुत अच्छा है, वा चित्रकार बहुत अच्छा है?

विचारचन्द्र—गुरुजी, वह आदमी बहुत अच्छा है इसे तो हम नेत्रसे ही देख रहे हैं।

गुरुजी—अच्छा, वह चित्रकारका काम तो अच्छा करता है, लेकिन वह दारू पीकर पड़ा रहता है और काम समयपर करके नहीं देता, सागुनके तख्ते कह कर देवदारके तख्ते लगाता है और अपनी मिहनतके अनुसार दाम न लेकर हमें धोखा देता है—भला, ऐसे आदमीको हम कैसा कहें!

विचारचन्द्र—वह चितेरा चाहे जैसा हो पर आदमी खराब है।

गुरुजी-अच्छा, तो एक बात सब ध्यानमें रखो कि मनुष्य के अपने अपने विशेष धन्धेको जानकारीके अलावा हरेक मनुष्यको मनुष्य बननेके लिए कितने ही सामान्य नीतिके गुण सीखने चाहिये। इन गुणोंको हिन्दू-धर्मके शास्त्रोंमें 'सार्ववर्णिक' अर्थात् सब वर्णोंके सामान्य धर्म बतलाये हैं। विशेष धर्म-अमुकवर्णके खास धर्म-चाहे जितने हम क्यों न पालें पर सामान्य धर्मके बिना वे निरर्थक हैं।

वे धर्म उस भींतकी पट्टियों पर लिखे हुए हैं जिन्हें तुमने पढ़ा होगा।

रमाकान्त—हां महाराज, इनमें जो आधे श्लोकमें अधर्म की व्याख्या दी गयी है वह मुझे बहुत पसन्द हैः-

परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम् ॥

दूसरेका उपकार करना ही पुण्य है, और दूसरेको पीड़ा देना ही पाप है।

---

(३०)

आत्मा (१)

गुरुजी—बालको! परमेश्वरके विषयमें हिन्दू धर्मका जो कथन है उस संबन्धमें हम यत्किञ्चित् समझ गये हैं, और इस दुनियामें हम किस तरह रहें कि परमात्मा हमें मिलसके इस विषय पर भी हिन्दू धर्मके मुख्य विचार हम देख चुके हैं। अब हम अपने विषयके तीसरे भागकी आलोचना करते हैं। इस प्रसंगमें जो सवाल हमें हल करने होंगे वे निम्न-रीतिके हैंः—हम सचमुच कौन हैं? कहांसे आये हैं और हमें कहां जाना है? यदि यह मान लिया जाय कि यह प्रत्यक्ष शरीर ही हमारी आत्मा है, हम जन्मके पहले कुछ भी न थे और मरनेके बाद भी कुछ न रहेंगे, इस शरीरकी चितामें भस्म होनेके बाद हमें कहीं किसीको जवाब देना नहीं, इस

लिये खाओ पीओ और मौज करो, तो ईश्वर और धर्मकी चर्चा करना उपहासमात्र है। जो यदि यही मत स्वीकृत हो तो अब तक परमेश्वर और उसके अनुकूल मार्गसंबन्धी जो जो विचार हमने किये हैं वे सब निरर्थक हैं। पर यह मत ठहर नहीं सकता। वास्तवमें बात यह है कि हम आत्मरूप हैं। वह आत्मा हमारे इस देहके जन्मसे पहले थी और मृत्युके समय हमारे देहके जल कर भस्म हो जाने पर भी रहेगी।

प्राचीन ऋषियोंके समयमें इस विषयको जाननेकी कैसी उत्कट इच्छा एक तुम्हारे ऐसे बालकको हुई इस विषयमें मैं तुम्हें एक कथा कह सुनाता हूं।

प्राचीन कालमें नचिकेता नामका एक विश्वासयोग्य बालक था। उसका बाप यज्ञमें बूढ़ी, कूबड़ी और खल्लड़ गायें ब्राह्मणोंको दानमें दे रहा था। यह देख नचिकेताने मनमें सोचा कि पिता जी निकम्मी वस्तुओंका तो दान कर रहे हैं, लेकिन अपनी एक भी प्रिय वस्तु नहीं दे रहे इसलिये उस यज्ञसे क्या लाभ? अतएव उसने पितासे कहा—" पिताजी। तुम निकम्मी वस्तुओंका दान तो करते हो किन्तु एक भी प्यारी वस्तु किसीको तुमने नहीं दी। उसने एकबार कहा, दो बार कहा। इतनेमें पिता चिढ़कर बोले— 'ले, तुझे ही मैं दे डालता हूं।" नचिकेता— "आप किसे देंगे?"

पिता (और चिढ़कर) " यमराजको "। नचिकेताने

विचार किया कि जैसे यह अनाज उगता है और काटा जाता है वैसे ही मनुष्यका जन्म होता है और मृत्यु होती है—बहुत मरे हैं और बहुत मरेंगे, इसलिये मृत्युसे डरना नहीं। फिर उसने हिम्मतसे उत्तर दिया—"मुझे खुशीसे यमके घर भेजो।" पिताने उसे यमके घर भेजा। उस समय यमराज घर पर न थे। इस कारण उसे तीन दिन यमराजके घर भूखे प्यासे बाट देखते हुये पड़ा रहना पड़ा। यमराज घर आये और नचिकेताको देखकर, अतिथिरूपसे उसका सत्कार करनेमें बिलम्ब हुआ इस कारण, उससे क्षमा मांगी, और तीन दिन बिना सत्कार उसे पडा रहना पड़ा इस कारण तीन वरदान मांगनेके लिये उससे कहा। इसके अनुसार नचिकेताने तीन वरदान मांगे—"हे यमराज। एक तो मेरे पिता मुझपर क्रुद्ध हुये हैं वे प्रसन्न हो जांय, दूसरा, जो स्वर्गकी अग्नि है उसका स्वरूप मुझे समझाओ, और तीसरा मृत्युके बाद मनुष्यकी क्या गति होती है यह मुझे कहो। कुछ लोग कहते हैं कि मृत्युके बाद भी जीव रहता है, और कुछ यह कहते हैं कि उसका नाश हो जाता है—इनमेंसे सच क्या है यह मुझे बतलाओ।" यमराजने पहला वरदान दिया, दूसरा दिया, लेकिन वे तीसरा देते हुए हिचके और कहने लगे—"नचिकेता, यह विषय बहुत सूक्ष्म है, इसे समझना सहज नहीं, इसलिये इसके बदले कोई दूसरा वरदान मांग लो।" यह कह कर यमराज उसे पुत्र, पौत्रका सुख, दीर्घ जीवन और

हाथी-घोडे, रथ, खजाने, महल इत्यादि संपत्ति देने लगे, परन्तु नचिकेताने इन्हें लेनेसे साफ इन्कार किया और बड़े जोशसे कहा—"हे देव। इन हाथी, घोड़े, राग, रंग को अपने ही पास रखो। मुझे तो दुनियाके सारे सुख तृण समान मालूम होते हैं। मुझे तो केवल एक ही वस्तु चाहिये और वह यह है कि आत्मा है वा नहीं, और है तो कैसी है मुझे तो यही बतलाइये।" यमराज नचिकेताका यह उत्तर सुन बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने उसे आत्माके विषयमें ज्ञान दिया।

इतना कह कर गुरुजीने पाठ समाप्त किया, लेकिन एक विद्यार्थी पूछ उठा—"गुरुजी, यमराजने जो नचिकेताको आत्माके विषयमे ज्ञान दिया था उसे तो आपने हमें बतलाया ही नहीं"।

गुरुजी—यमराजने नचिकेतासे कहा था कि यह विषय अति सूक्ष्म है। सचमुच तुम्हारी इस विषयमें दिलचस्पी देख मैं बहुत प्रसन्न हूं। अतएव यमराजके दिये हुये ज्ञानमेंसे कुछ एक दो विषय तुम समझ सकते हो जिन्हें मैं बतलाता हूं :-

यमराजने कहा—"नचिकेता दो पदार्थ इस संसारमे मनुष्यके सामने आकर खड़े रहते हैं—एक श्रेय और दूसरा प्रेय। (प्रेय अच्छा, प्रिय, मनपसन्द, और श्रेय हित कारक) इन दोनोंमेंसे चतुर मनुष्य दूसरी वस्तु ही पसन्द करता है, और उसे ही तुमने पसन्द किया इस कारण मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूं। अब आत्माके विषयमें मैं जो कहता

हूं उसे सुनो। शरीर तो एक रथ है और इसमें रथके स्वामी· भाँति अधिरूढ़ आत्मा है।

बुद्धि इसका सारथि है, मन इन्द्रियरूप घोड़ोंकी लगाम है और ये घोड़े विषयोंकी ओर दौड़ते हैं। इन्द्रियरूपी घोड़े इधर उधर, मनमानी ओर दौड़ कर, रथको, अपने आपको, और रथमें बैठे हुये स्वामीको गड्ढेमें न डाल दें इस कारण बुद्धिरूपी सारथि अच्छा होना चाहिये। यदि सारथि अच्छा होगा तो वह रथ स्वामी, अर्थात् आत्माको उसके परम पद—परमात्माके धामतक—पहुंचा देगा

नचिकेता इस ज्ञानको पाकर पिताके पास आया, और पिताने उसे प्रेमसे बुलाया। इस कथाका सारांश यह है कि जो श्रद्धावान है, जो मरनेसे नहीं डरता, और जो दुनिया के सुखका लालची नहीं वही आत्माको जान सकता है।

(३१)

आत्मा (२)

शरीरमें होते हुए भी शरीरसे जुदा है और जुदी प्रकारक है।

विचारचन्द्र—गुरुजी, आपने कल हमें नचिकेता और यमराजकी बात कही वह हमे बड़ी रोचक लगी, पर उसमें यमराजने जो यह कहा कि आत्मा इस शरीररूपी रथमें बैठा हुआ इस रथका स्वामी है, समझमें नहीं आता। शरीरसे आत्मा जुदा किस रीतिसे हो सकता है?

गुरुजी--तुम्हारा प्रश्न उचित है। सारे दृष्टान्त अधूरे हैं यह परमेश्वरके विषयमें बोलते हुए हमें कहना पड़ा था। क्या तुमने उस बातका स्मरण रखा है? उसी रीतिसे यहां भी तुम्हें समझना चाहिये। श्वेतकेतु और उसके पिताकी कथा तुम्हें याद होगी। उन दोनोंकी आपसकी बातचीतमें एक बात यह थी कि पिताने बहुत सादा दृष्टान्तसे यह समझाया था कि शरीरसे जुदी आत्मा है और वह शरीरके एक कोनेमें-रथमें रथके स्वामीकी भांति-बैठी हुई नहीं, बल्कि संपूर्ण शरीरमें व्याप्त है। पिताने श्वेतकेतुसे कहा-'श्वेतकेतु! जो इस झाड़के मूलमें कुहाड़ी चलाई जाय तो इसके जीवित होनेके कारण इसमेंसे रस निकलेगा, इसके बीचमें वा धड़में कुहाड़ी चलाई जाय तो भी इसके जीवित होनेके कारण इसमेंसे रस निकलेगा। परन्तु यदि इसकी शाखामेंसे जीवन चला जाय तो वह सूख जायगा, दूसरी शाखामेंसे जीवन जाता रहे तो भी वह सूख जायगा; तीसरी मेंसे जाता रहे तो भी सूख जायगा-और इस क्रमसे यदि सारे वृक्षमेंसे जीवन चला जाय तो सारा वृक्ष सूख जायगा। तब यह समझना चाहिये कि जीवका वियोग ही मरना है। जीव स्वयं नहीं मरता, परन्तु इसके वियोगके कारण यह जिसमें रहता था वह देह मरता है"। इस प्रकार श्वेतकेतुके पिताने उसे एक सीधा दृष्टान्त देकर यह समझाया था कि देहमें आत्मा रहती है, पर वह देह आत्मा नहीं है।

फिर, यह आत्मा सचमुच कितना अद्भुत पदार्थ है और हमें कितना प्यारा है इसे समझनेके लिये एक बात सुनो—देवता और असुरोंने सुना कि आत्मा बुढ़ापा, मृत्यु, रोग, भूख, प्यास आदि सब दोषोंसे रहित है, और प्रजापति इस विषयका ज्ञान देते हैं। अ एव देवताओंके राजा इन्द्र और असुरोंके राजा विरोचन दोनों प्रजापतिके पास गये और ३२ वर्ष ब्रह्मचर्य पालनकर उनके पास रहे। ३२ वर्ष होनेपर प्रजापतिने उनसे पूछा "हे इन्द्र और विरोचन! तुम क्या सीखने आये हो"? दोनोंने कहा "महाराज, आत्मा क्या वस्तु है इसे जाननेके लिये हम आये हैं"। तब प्रजापतिने उनसे यह कहा—"देखो आंखमें जो यह पुरुष देख पड़ता है वही आत्मा है"।

इन्द्र-विरोचन—"पानीमें वा शीशेमें जो देख पड़ता है क्या वही आत्मा है"?

प्रजापति – "हां"।

फिर दोनोंने एक पानी भरे बासनमें देखा और आकर कहा:-

"महाराज, हमने आत्माको देखा नखसे सिखतक, सिर-से पैरतक"।

प्रजापति — अच्छा।

फिर इन्द्र विरोचन दोनों अपने अपने घर चल पड़े। विरोचन अपने असुरोंके मण्डलमें पहुंचा, और सबको, यह

वस्त्र-अलङ्कार पहननेवाला देह ही आत्मा है, इस जड़वादका उपदेश दिया। लेकिन इन्द्रको इससे सन्तोष नहीं हुआ। वह आधे रास्तेसे ही पीछे फिरा और प्रजापतिके पास आया। ३२ वर्ष ब्रह्मचर्य पालनकर फिर प्रजापतिसे हाथ जोड़कर उसने पूछा—"महाराज, ऐसी आत्मासे मुझे सन्तोष नहीं हुआ-इस शरीरको जैसे वस्त्र अलङ्कार पहनाये जाते हैं वैसा ही वस्त्र अलङ्कारवाला यह देख पड़ता है। यदि शरीर लंगड़ा हो तो वह भी लंगड़ा है, शरीरमें आंख नहीं तो वह भी अन्धा मालूम होता है। ऐसी आत्मामें मुझे कुछ भी अनुराग नहीं"। तब प्रजापतिने कहा—"अच्छा, तो जो स्वप्नमें फिरती हुई वस्तु नज़र आती है वही आत्मा है। इस उपदेशको सुन इन्द्र चला गया लेकिन फिर आधे रास्तेसे लौट आया और फिर ३२ वर्ष ब्रह्मचर्य पालनकर प्रजापतिके पास बैठकर पूछने लगा—"महाराज, यह तो ठीक है कि शरीरके अन्धे लूले होनेपर भी स्वप्नमें दिखाई देनेवाली आत्मा अन्धी लूली नहीं होती-पर स्वप्नमें इस आत्माको यदि कोई मारता है तो वह दुःखी होती है, रोती है, ऐसी आत्मामें मुझे कुछ आनंद प्रतीत नहीं होता"। फिर प्रजापतिने कहा—"अच्छा तो स्वप्न रहित गहरी नींदकी दशामें जो रहती है वही आत्मा है"। इन्द्र इस उपदेशको सुनकर चला गया, लेकिन इससे सन्तुष्ट न होकर आधे रास्तेसे लौटा और ३२ वर्ष ब्रह्मचर्य्य पालनकर प्रजापतिसे कहा:—"महाराज! यह तो

सच है कि आपकी बतलायी हुई इस नयी आत्मामें कोई दुःख प्रतीत नहीं होता, किन्तु उस दशामें 'मैं हूं' यह गाढ़ निद्राके कारण कुछ भी प्रतीत नहीं होता । इस आत्मासे भला क्या लाभ ! इसलिये मुझे तो ऐसी आत्मा भी इष्ट नहीं" । फिर प्रजापतिने पांच वर्ष (कुल १०१ वर्ष) ब्रह्मचर्य पालन कराकर इन्द्रको आत्माका उपदेश किया । इस बातका तात्पर्य यह कि जो अपने आनन्दका स्थान है, जो होना हम चाहते हैं वह आत्मा जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति (गाढ़ निद्रा) इन तीनों अवस्थाओंमें रहती हुई प्रतीत होती है, किन्तु ऐसा होते हुए भी वह इन तीनों अवस्थाओंसे दूर है ।

३२

जीवात्मा और परमात्मा (१)

विचारचन्द्र—गुरूजी, जिस अद्भुत आत्माके विषयमें कल आपने कहा था उसे किसने उत्पन्न किया होगा ? और वह किस वस्तुमेंसे उत्पन्न हुआ होगा ?

गुरूजी—हिन्दूधर्ममें आत्माको उत्पन्न हुआ नहीं मानते । वह अनादि है, उसका अमुक दिनसे आरम्भ नहीं होता ।

विचारचन्द्र—गुरूजी, फिर हम सब क्यों ईश्वरके बालक कहलाये जाते हैं ?

गुरूजी—इसका अर्थ यह है कि जैसे अग्निमेंसे चिन-

गारियां निकलती हैं वैसे ही हम ईश्वरमेंसे निकलते हैं। किन्तु चिनगारियां होनेसे कोई नया पदार्थ तो उत्पन्न होता नहीं बल्कि वे तो अग्निके बड़े भागमेंसे अलग होकर छोटे दिखायी देते हैं और वे स्फुलिङ्ग कहे जाते हैं। इसी प्रकार आत्मा और परमात्मा तो एकही वस्तु है।

विचारचन्द्र--लेकिन महाराज, जैसे अग्निमेंसे स्फुलिङ्ग निकलते हैं वैसे हम परमात्मामेंसे निकले हुए हैं यह दृष्टान्त क्या बिल्कुल ठीक है ?

गुरूजी--हां, लेकिन इस दृष्टान्तका यह अर्थ है कि परमात्माकी शक्ति जिसे प्रकृति कहते हैं और जो हमारे आसपास फैली हुई है, उससे हमारा देह बना है और उस देहके कारण हम ये जीव बने हुए हैं। पर जैसे स्फुलिङ्ग अग्निके बाहर निकलते हैं वैसे हम कुछ परमात्माके बाहर निकलते नहीं-परमात्माके बाहर भला क्या हो सकता है ? परमात्मा तो सर्वव्यापक, सर्वरूप है।

विचारचन्द्र--गुरूजी, ठीक। तो इसी कारण प्रकृति माता है, यह ठीक है न ?

गुरूजी--हां, लेकिन परमात्मा और परमात्माकी शक्ति ये दो जुदी वस्तुएँ नहीं, जैसे तेज और तेजकी शक्ति, जैसे दीया और उसकी प्रकाश करनेवाली शक्ति ये दो जुदी नहीं हैं। जो परमात्मा है वही उसकी शक्ति है, और इस कारण परमात्मा को पिता और माता दोनों कहा जा सकता है। इसके

अलावा परमात्माके लिये एक दूसरी उपमा दी जाती है। क्या तुम उसे जानते हो?

हरिलाल--हां, राजाकी।

गुरूजी--ठीक, अब इसका कारण कहो।

हरिलाल—राजाकी भांति परमेश्वर भी हमारे लियें नीतिके और इस सृष्टिके नियम बांधता है बुरे मार्गसे जाते हुए रोकता है, और अच्छे मार्गसे हमें उन्नत करता है। हम दोष करें तो वह शिक्षा करता है, और अच्छे ढंगसे चलें तो प्रसन्न होकर पुरस्कार भी देता है।

गुरूजी —ठीक, अब इसके साथ इतना ध्यानमें रखना चाहिए कि राजा तो कठोर न्यायकी मूर्ति है, और ये माता पिता तो वात्सल्य (माता पिताका पुत्र-प्रेम) की मूर्ति हैं। इस कारण जब यह दूसरा भाव विशेषरूपसे बतलाना हो तब हम ईश्वरको मातापिताकी उपमा देते हैं। क्या कोई तीसरी उपमा दी जाती हुई तुम जानते हो?

लड़कोंने और कोई उपमा सुनी नहीं थी इस कारण वे चुप रहे।

गुरूजी—जीव और ईश्वरको कितनीही बार 'सखा'—मित्रकी उपमा दी जाती है। राजाकी अपेक्षा माता पिताकी उपमा कोमलता दरसाती है किन्तु उसमें भी एक कमी है। माता पिताके साथ हम आदरपूर्वक व्यवहार करते हैं, दुःखके समय उनका सहारा लेते हैं, किन्तु हृदय खोलकर पूरी पूरी

छूटसे बिना संकोचके, दुःख सुखकी बात करना तो मित्रके ही साथ बन सकता है, इस कारण परमात्माको गीतामें सखा अर्थात् मित्र कहा गया है । वेदका कथन है कि इस संसाररूप वृक्षपर दो मिले हुए सखारूप पक्षी बैठे हैं, उनमेंसे एक इस वृक्षके मीठे फल खानेकी कामना करता है और खाता है और दूसरा इन फलोंका देखता रहता है पर खाता नहीं । खानेवाला पक्षी तो जीव है और केवल देखनेवाला तो परमात्मा है । हमारे हृदयमें भी हमारा और परमात्माका इकट्ठा वास है किन्तु हम इस संसारके भोगोंमें फँस रहे हैं, और परमात्मा साथ रहता हुआ देखता है और मित्रकी तरह हमें चितावनी भी देता रहता है ।

अब मैं एक और जानने योग्य बात कहता हूं । इन दो सखाओंके नाम अपने इतिहास-पुराणोंमें नर (जीव) और नारायण (परमात्मा) बतलाये गये हैं, और इन नर और नारायणके अवतार अर्जुन और कृष्ण थे । दो मित्र हैं, उनमें परमात्मा तो इस संसारमें जीवात्माको उचित मार्गपर चलाता है, अतएव कृष्ण इस संसाररूप रणक्षेत्रमे अर्जुनके सारथि बने ।

कृष्ण ऐसे योगिराजको व्यासजीने अर्जुनका सारथि क्यों बनाया इसका सूक्ष्म अभिप्राय आज लड़कोंने समझा और समझकर सब बहुत आनन्दित हुए ।

(३३)

जीवात्मा और परमात्मा (२)

पहले दिनके पाठपर विचारकर दूसरा पाठ आरम्भ करना यह धर्म-कक्षाका प्रतिदिनका रिवाज था।

गुरुजी--बालको, गये कल तुम जीवात्मा और परमात्मा संबन्धी कितने दृष्टान्त समझे ?

बालक--तीन।

गुरुजी--वे क्या हैं ?

रमाशंकर--एक राजा-प्रजाका, दूसरा मावाप और बच्चोंका, और तीसरा दो मित्रोंका।

गुरुजी--इनमें क्या इस पिछले दृष्टान्तमें कोई कमी मालूम हुई ?

रमाशंकर--हां, हमारा और परमात्माका संबन्ध अकेला मित्र ऐसा नहीं। मित्र तो बराबरके होते हैं। क्या हम और परमात्मा कुछ बराबर हो सकते हैं ? मित्रके भावके साथ, राजाप्रजाके और मावाप बच्चोंके भाव भी होने आवश्यक हैं।

गुरुजी--ठीक। किन्तु यह भी समझना चाहिये कि हमारा और परमात्माका संबन्ध किसी भी एक दृष्टान्तसे पूरा पूरा समझाया नहीं जा सकता। अच्छा, तुमने जो कहा था उसके अलावा तुम्हें मित्रके दृष्टान्तमें और कोई कमी समझमें आती है ?

रमाशंकर—नहीं, गुरुजी।

गुरुजी—तो सुनोः मित्रका देह एक दूसरेसे स्वतन्त्र है, किन्तु जीवात्माका देह तो परमात्माके देहमेंसे-हमारे आसपासकी इस विस्तीर्ण प्रकृतिमें हीसे उत्पन्न हुआ है, बल्कि उसका ही भाग है। इस कारण मित्रका दृष्टान्त भी पूर्णरीतिसे लागू नहीं होता। फिर कितने हो शास्त्रकारोंके अनुसार इसमें एक और कमी है। मित्रके दृष्टान्तमें, यह है और यह दूसरा है, इस प्रकार दो गिने जा सकते हैं, पर परमात्मा तो वही है जो हमारी सबकी आत्मामें है। चैतन्यरूपसे रूपसे हम सब एक ही हैं। (यह पिछला भाग लड़कोंकी समझमें न आ सका, यह बात गुरूजीने लड़कोंकी आकृतिसे जान ली)।

गुरुजी—बालकों, मुझे मालूम होता है कि तुम पिछले भागको नहीं समझे। अच्छा, अभी इसे रहने दो। (सब समुद्रके पास खड़े थे। समुद्र धीरे धीरे बढ़ता आता था और समुद्रकी लहरें एकके बाद दूसरी बढ़ती ही जाती थीं)।

गुरुजी—देखो, ये लहरें कैसी उछल रही हैं!

कान्तिलाल—हां, गुरूजी, बड़ा सुन्दर दृश्य है! देखो, यह लहर दूसरी लहरकी अपेक्षा कितनी बड़ी आ रही है!

गुरुजी—आओ, लहरें गिनें, देखें पांच मिनिटमें कितनी आती हैं?

कान्तिलाल—(गिनकर) पन्द्रह। गुरुजी, अब हम रुकें, क्योंकि समुद्र बहुत बढ़ता आता है।

गुरुजी—समुद्र बढ़ता आता है या लहरें ?

कान्तिलाल—क्या लहरें समुद्र नहीं ? क्या लहरें कुछ समुद्रसे जुदी हैं ?

गुरुजी—जो तुमने पन्द्रह गिने वे क्या लहरें थीं या समुद्र ?

कान्तिलाल—लहरें। लेकिन समुद्ररूपसे तो सब एक ही हैं न ?

गुरुजीः—ठीक, तो अब समुद्रके स्थानमें परमात्माको समझो, और तरङ्गोंकी जगह जीवको समझो। तरङ्गें एक दूसरेसे जुदी हैं तो भी समुद्ररूपसे सब एक हैं। उसी प्रकारसे जीव एक दूसरेसे जुदे हैं तथापि परमात्मरूपसे सब एक हैं। फिर तरङ्ग तो समुद्र ही है, तरङ्ग समुद्रसे जुदी नहीं, इसी प्रकार जीवात्मा ही परमात्मा है, जीवात्मा परमात्मासे जुदी नहीं।

इस दृष्टान्तमें जो बात पहले लड़कोंकी समझमें न आयी थी, वह सहज हीमें उनकी समझमें आ गई। जहां यह विषय कठिन लगा। वहां 'रहने दो' कहकर गुरुजीने सबको दूसरी बातमें लगा दिया था और अब उस बातमेंसे ही छोड़े हुए विषयको समझा दिया। लड़के इस बातसे बहुत चकित हुए। शास्त्रमें दृष्टान्त किस लिये दिये जाते हैं इसका भी उन्हें परिचय मिला, अर्थात् दृष्टान्तसे विषय तुरन्त समझमें आता है।

अब धीरे धीरे पानी उतरा। रेतीमें जहां पहले दिन खेलते खेलते लड़कोंने छोटे छोटे गड्ढे खोदे थे उनमें पानी भर गया। सन्ध्या हुई, आकाशमें चन्द्रमा देख पड़ा। गुरुजी-ने बालकोंको खबोचियोंमें चन्द्रमाका प्रतिबिम्ब दिखलाया और कहाः—

बालको, इस चन्द्रमाके प्रतिबिम्बको देखो। इसी प्रकारसे जीवात्मा उस परमात्माका—हमारे शरीर और हृदयमें पड़ने वाला-प्रतिबिम्ब है यह कितने ही शास्त्रकार कहते हैं॥

(३४)

कर्म और पुनर्जन्म

धर्म शिक्षणके वर्गके विद्यार्थी बनकी शोभा देखते देखते चले जाते हैं। रास्तेमें गुरुजीने कहा-"देखो, बालको, इस खेतमें अनाजका पाक कैसा अच्छा है?" सब लड़के गेहूंकी बालोंको देखने लगे और उनमें दूध भरे दानोंको देख बड़े प्रसन्न हुए। उनमेंसे एक शङ्कर नामके बालकने कहा—"गुरुजी, हमने जो पहला खेत देखा था उसमें तो दाने सूख गये थे, और कितनी ही बालें भी पूरी न हो पाईं थीं। इस खेतका मालिक भाग्यशाली प्रतीत होता है?"

पुरुषोत्तम—गुरुजी, शङ्करने जो कहा क्या यह सच है?

मेरा तो यह मत है कि यह उसकी मिहनत, बुद्धि और मनोयोगका ही फल है उसने खेत अच्छी तरह जोता होगा, बीज भी अच्छा पसन्द कर बोया होगा, और इसके बाद पानी देनेमें भी बहुत श्रम किया होगा, इन कारणोंसे ही उसके गेहूं अच्छे हुए।

गुरुजी—पुरुषोत्तमका कथन सत्य है। जैसा करेंगे वैसा पायँगे-*जो जस बुवै सो तस फल चाखा।* गेहूं बोनेसे गेहूं मिलते हैं; और गेहूंमें भी बीज खाद और पानीके अनुसार ही पाक होता है।

शङ्कर—लेकिन गुरुजी, खेत ही खराब हो तो बिचारा किसान भी क्या करेगा?

गुरुजी—बहुत कर सकता है। तुमने अमेरिकाके किसानोंकी बात सुनी होगी। हजारों मीलके जङ्गलमें बसकर खराब जमीनको अपनी मिहनतसे सुधारकर, अच्छा खाद डालकर वे अपने खेतोंसे बहुत पैदावार कर सकते हैं। लेकिन इसके साथ मेरा कथन इतना तो सच है कि जमीनपर भी पैदावारका बहुत आधार रहता है। उस किसानके पास यदि अच्छी जमीन होती तो अच्छा पैदावार हो सकती थी। मैं इन दोनों किसानोंके सच्चे हालात जानता हूं। वे दोनों भाई हैं। उनके बापने तो उन्हें एकसी मिल्कियत दी थी, लेकिन उनमेंसे एकने तो बहुतसा धन उड़ा दिया, और बचे हुए थोड़े धनसे उस बुरे खेतको मोल ले लिया।

दूसरे भाईने तो यह अच्छा खेत ही लिया, लेकिन अब भी वह पहला भाई चाहे तो अमेरिकाके किसानकी भाँति बहुत कुछ कर सकता है।

इस प्रकार बात चीत करते करते सब अपने रोज़के मिलनेकी जगह बड़े बरगद की छायामें आ पहुंचे।

गुरुजी—आज हमें यहां बहुत नहीं बैठना है। मैंने रास्तेमें जो बात चीत तुमसे की थी उसमें ही मैंने तुम्हें आजका पाठ पढ़ा दिया। हिन्दू धर्मकी, ब्राह्मण, बौद्ध, जैन तीनों शाखाओंके माने हुए एक बड़े सिद्धान्तके विषयमे वह पाठ था। वह सिद्धान्त कर्मका महानियम है—*जो जस बुवे सो तस फल चाखा—अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्*

हमें इस जन्म और पूर्व जन्मके किये हुए कर्मोंका फल तो अवश्य भोगना ही पड़ेगा। लोग साधारणतया कर्म शब्दका भाग्यके अर्थमें प्रयोग करते हैं। 'कर्ममें लिखा है'—'भाग्यकी रेखाएँ मिट नहीं सकती' इत्यादि वाक्य हम अक्सर सुना करते हैं, किन्तु कर्म शब्दका अर्थ भाग्य नहीं बल्कि किया हुआ काम है। भाग्यका सहारा लेकर आलसी और निरुद्यम होकर बैठ रहना हिन्दूधर्मकी दृष्टिसे अनुचित है, बल्कि कर्मका अभिप्राय ही यह है कि मनुष्य अपने शुभ, अशुभ कर्मोंके लिये उत्तरदायी है, और 'जो जस बुवे सो

तस फल चाखा' यह विचार कर उसे उद्योगी होना ही चाहिये। हमारा सुख-दुःख हमारे इस जन्मके वा पूर्व जन्मके किये हुए कर्मों पर निर्भर है, यही हमारे धर्मका अटल सिद्धान्त है।

अब एक और बात पर भी विचार करो। हमसे इस जीवनमें अनेक भूलें होती है जिनका फल हमें भोगना पड़ता है। कितने ही अपने किये हुए कर्मोंका फल तो हम यहीं भोग लेते हैं, किन्तु हमें अपने सभी शुभ, अशुभ कर्मोंका बदला इस जीवनमें मिलनेसे रह जाता है। कभी कभी तो हमें पापी मनुष्य सुखी और धर्मात्मा दीन हीन देख पड़ते हैं, पर यदि इस जगत्का कोई न्यायी नियन्ता (नियमानुसार चलाने वाला) परमेश्वर है—और यह है ही यह हमारा अटल विश्वास है—तो जैसे दो और दो चार ही होते है और पाँच नहीं ही होते, सूर्य पूर्वमें ही उदित होता है और पश्चिममें कदापि नहीं होता, वैसे ही अन्तमें-इस जन्ममें नहीं तो दूसरे जन्ममें तो अवश्य-अच्छे कामका फल अच्छा और खोटेका खोटा हुए बिना रह नहीं सकता।

इस प्रकार हमारे जीवनका भूत और भविष्य कालसे घनिष्ठ संबन्ध है। यदि ऐसा न हो तो अबके किये हुए कर्म निष्फल होंगे और पहले कुछ किये बिना वर्तमान स्थिति उत्पन्न हुई है यह मानना पड़ेगा, किन्तु यह न्यायी ईश्वरके राज्यमें कैसे संभव है? इस रीतिसे कर्मके सिद्धान्तके

साथ पूर्व जन्म और पर जन्मका-अर्थात् जीवनकी अनादि और अनन्त रेखाका-हम जन्मसे जन्मे नहीं और मृत्युसे मरते नहीं इस महासत्यका-सिद्धान्त जुड़ा हुआ है। ये दोनों सिद्धान्त ईश्वरकी न्यायपरायणताके आधार पर रचे गये हैं।

(३५)

स्वर्ग और नरक

लड़के अगले दिनके उपदेश पर घर जाकर विचार किया करते थे और उसमें जो बात पूछने योग्य होती थी उसे दूसरे दिन वे पूछा करते थे। लड़कोंकी विचारशक्ति बढ़ानेके लिये सामान्य रीतिसे इस शैलीका अनुसरण किया जाता था।

गुरुजी--किसीको कुछ पूछना है ?

विचारचन्द्र-महाराज, आपने यह कहा था कि इस जीवनमें समस्त कर्मोंके फल नहीं भोगे जाते इस कारण उनके भोगनेके लिये पुनर्जन्म लेना पड़ता है। लेकिन पुनर्जन्म के बदले स्वर्ग-नरकके मान लेनेसे काम चल सकता है।

गुरुजी-हिन्दू धर्म स्वर्ग नरक तो मानता ही है लेकिन उसके साथ पुनर्जन्म भी मानता है। इन दोनों को मानने का कारण यह है कि हम जो भोग वर्तमान समयमें भोगते हैं वे कुछ एकदम बिना कारण नहीं आपड़े, जगत्में जैसे हरेक

वस्तु का कारण होता है वैसेही इसका भी कारण होना चाहिये, और इसलिये पहले हमनें किसी स्थलमें ऐसे कर्म किये होंगे कि जिनका परिणाम हमारा वर्तमान जीवन है लेकिन स्वर्ग और नरक तो भोगभूमि है, कर्म भूमि नहीं, अर्थात् वहां तो कर्मके फल भोगे जाते हैं, कर्म किये नहीं जाते।

हरिलाल–गुरुजी यह कैसे ?

गुरुजी–कारण यह कि हमारी व्याख्याके अनुसार स्वर्ग और नरक अच्छे और बुरे कर्माके फल भोगनेके स्थान हैं। वहां भी यदि दूसरे कर्म किये जांय तो वे पूर्वजन्म और परजन्मके कारण हो जायंगे। इसलिये हमारी हालकी ज़िन्दगी के सुख दुःखके कारणरूप जो कर्म होने चाहियें उनका स्थान स्वर्ग-नरक नहीं, बल्कि पूर्वजन्म ही माना जाता है।

विचारचन्द्र–तो फिर स्वर्ग नरक की ज़रूरत ही क्या रही ?

गुरुजी–सुनो। हमारे जो भले बुरे कर्म देख पड़ते हैं वे वास्तवमें ऐसे बड़े होते हैं कि उनका बदला इस हमारी छोटी सी दुनियांमें नहीं मिल सकता। अजीगर्त और शुनःशेप की बात याद करो। उसमें अजीगर्त की निष्ठुरताके लिये बहुतसे बहुत इस दुनियांमें क्या सजा हो सकती है, इस तरह के कामके लिये मृत्यु की सजा भी बस नहीं।

विचारचन्द्र–लेकिन यदि यह मानलें कि आने वाले जन्ममें शुनःशेप अजीगर्तसे वैसाही व्यवहार करे तो नरक की कल्पना करना तो व्यर्थ ही होगा।

गुरुजी–तो शुनःशेप अजीगर्तके बीचमें बदलेके बाद निबटारा तो हो सकता है किन्तु परमेश्वरके सामने तो अ-पराध बनाही रहता है न ? पर दयालु ईश्वर उस अपराधको सदा अपनी दृष्टिमें नहीं रखता। नरककी सजा का भोग कराकर वह उसे शुद्ध करता है। फिर यदि शुनःशेप क्षमा शील और उदार मन का हो और जैसा अजीगर्तने उसके साथ एक जन्ममें किया वैसा वह स्वयं अजीगर्तके प्रति दूसरे जन्ममें* न करे तौभी इसके कारण अजीगर्त का किया हुआ पाप क्या मिट सकता है ? वह तो जब अजीगर्त उसकी सजा नरकमें भोग लेगा तभी मिट सकता है। इस लिये पुनर्जन्मके साथ स्वर्ग-नरक मानना आवश्यक है॥

भले बुरे कर्मोंके अनुसार स्वर्ग-नरक भोगने ही पड़ते है इस सम्बन्धमें हिन्दू-धर्म का विश्वास इतना दृढ़ है कि युधिष्ठिर ऐसे धर्मराजाके अवतार माने हुये महापुरुषको भी इस नियमसे मुक्त नहीं माना गया॥

प्रेमशंकर–गुरुजी, स्वर्ग और नरक कहां होंगे ?

गुरुजी–ये स्वर्ग और नरक हमारी भूमिके सदृश कोई और भूमि नहीं। ये तो जीवकी वर्तमान से कुछ जुदीही प्रकारकी अवस्थायें हैं, जिन अवस्थाओंमें जीवको केवल सुख और दुःख ही भोगने होते हैं। इसलिये हिन्दू शास्त्रकार कितनी ही बार यह कहते हैं कि स्वर्ग और नरक ये सुख दुःख

---

* इस पुस्तक में ' हरिश्चन्द्र का यज्ञ ' शीर्षक पाठ देखो।

की अवस्थायें है और वे हमारे भीतर ही हैं। जैसे हम स्वप्नमें देखी हुई दुनियाको न इस पृथ्वीके ऊपर अथवा उसके नीचे ही कह सकते हैं वैसेही ये स्वर्ग और नरक ऊंचे है वा नीचे यह नहीं कह सकते। किन्तु हमारे मनका कुछ ऐसा स्वभाव है कि जो वस्तु अच्छी है उसे हम हमेशा ऊंचा मानते हैं. और जो चीज़ बुरी है उसे हम नीचा मानते हैं इसलिये स्वर्ग ऊपर और नरक नीचे माना गया है।

सुशील—गुरुजी, स्वर्ग एक है वा अनेक ?

गुरुजी—सुख एक है अतएव सुखका धाम स्वर्ग भी एकही है। लेकिन परमात्माके जुदे जुदे रूपके कारण जैसे देवता अनेक हैं वैसेही इन देवताओंके धाम भी अनेक हैं। सृष्टिलीला सर्वत्र एक है तथापि पहाड़पर हवाके झकोरोंका एक तरहका सुख, समुद्रके किनारे दूसरा तरहका सुख, बगीचेमें तीसरी तरहका सुख मिलता है। ये जुदे जुदे लोक अग्निलोक, वायुलोक, चन्द्रलोक इत्यादि कहे जाते है, और वे सब मिलकर स्वर्ग बन जाते है। तुम्हें याद होगा कि पूर्व व्याख्यानोंमें हम शिव और विष्णुकी भक्तिके पन्थोंका निरूपण कर चुके है। इन देवताओंके धाम क्रमसे कैलास और वैकुण्ठ कहे जाते है। शिवजीके भक्त कैलासवासकी मनोकामना रखते है, और वैष्णवजन विष्णु धाम वैकुण्ठके लिये तरसते है। ये धाम भगवद्भक्तोंकी दृष्टिमें स्वर्ग है।

(३६)

मुक्ति ।

रामनाथ—गुरुदेव ! कल आपने स्वर्ग और नरकका वर्णन किया था, उसे सुनकर मेरे मनमें यह हुआ कि स्वर्गका सुख तो अनन्त-अपार होगा । क्या यह मेरा विचार सत्य है ?

गुरुजी—अनन्त सुखका धाम ही स्वर्ग है, और जिसमें अनन्त सुख है उस स्वर्गके सुखका पार भी नहीं । इसी अर्थमें 'स्वर्ग' शब्दका प्रयोग भी होता था किन्तु धार्मिक जीवनके जैसे जैसे जुदे २ मार्ग बनते गये, वैसे २ जीवनके लक्ष्यरूप स्वर्गके भी स्वरूप जुदी जुदी तरहके माने जाने लगे। जो लोग अपना सारा जीवन यज्ञ दान, व्रत, तप करनेमें व्यतीत करते हैं और ईश्वरके विषयमें विचार नहीं करते हैं उन्हें एक प्रकारका परलोक मिलना चाहिये, और जो ईश्वरकी निष्काम भक्तिको वा उसके ज्ञानको अपने जीवनका परम लक्ष्य मानते हैं उनकी गति जुदी रीतिकी होनी चाहिये। येही दो जीवनके मार्ग हैं और इनके अनुसार परलोकके भी दो मार्ग हैं जो क्रमसे *धूममार्ग* (धुएँका मार्ग), और *अर्चिमार्ग* (प्रकाशका मार्ग) कहे जाते हैं। यज्ञादिके साथ धुएँका संबन्ध है इस कारण वह धूम मार्ग कहलाता है, और ज्ञान तो प्रकाशरूप है इसलिये उसका मार्ग अर्चिमार्ग कहलाता है।

धूममार्ग द्वारा स्वर्ग प्राप्त होता है, लेकिन स्वर्गके सुखका अन्त है, क्योंकि जितना पुण्य उतना ही स्वर्गका सुख होता है, और उस सुखके भोगके पश्चात् जीवको फिर पृथ्वीपर लौटकर आना पड़ता है। अतएव जो यज्ञयागादिक मात्रही किया करते हैं वे पृथ्वीसे स्वर्ग और स्वर्गसे पृथ्वीपर आया जाया करते हैं। यह निरन्तर आवागमनकी स्थिति सुख दुःखसे मिश्रित है, किन्तु यह स्थिति चाहे अखण्ड सुखसे परिपूर्ण क्यों न हो तथापि विचारवान पुरुषोंको यह आवागमन अच्छा नहीं लगता। उन्हें तो इस दुनिया वा स्वर्गकी अपेक्षा ईश्वरका समागम विशेष आनन्दप्रद होता है, और इस कारण वे पृथ्वी और स्वर्गका फेरासे, और जन्म पुनर्जन्म के चक्रसे, जिसे 'संसार' अर्थात् जो चलता ही रहता है कहते हैं, उसमेंसे छूटनेकी इच्छा करते हैं। इस संसारसे छूटनाही मुक्ति है मुक्ति विविध प्रकारकी है—एक *'सालोक्य'* अर्थात् प्रभुके लोकमें, वैकुण्ठ वा कैलासमें जाकर बसना, दूसरी *'सामीप्य'* अर्थात् प्रभुके समीप ही रहना, तीसरी *सार्ष्टि* अर्थात् ईश्वरके सदृश ऐश्वर्य प्राप्त करना, चौथी *सारूप्य* अर्थात् ईश्वरके समरूप होना, पाँचवीं *सायुज्य* अर्थात् ईश्वर से मिलजाना-येही मुक्तिके पाँच भेद हैं। इनके अतिरिक्त एक *कैवल्य* मुक्ति है, उसमें आत्मा अपने केवल शुद्ध-रूपका अनुभव करती है। इस कैवल्य मुक्तिमें आत्माके यथार्थ स्व-

रूपका अनुभव मरणके पश्चात् तथा जीवित दशामें रहते हुए भी हो सकता है। एक विदेहमुक्ति अर्थात् देह छूटनेके बादकी मुक्ति और दूसरी जीवन्मुक्ति अर्थात् जीवित दशाकी मुक्ति क्रमसे कही जाती है॥

(३७)

मुक्तिके साधन

विचारचन्द्र—गुरुजी, कल आपने जो उत्तममें उत्तम प्रकारकी मुक्ति बतलाई वह कैसे मिल सकती है?

गुरुजी—वह गाँठ छोड़नेपर मिलेगी।

विचारचन्द्र—लेकिन वह कैसे छूटेगी।

गुरुजी—गाँठ पड़ी हो तो वह सुलझाने ही से खुल सकती है।

विचारचन्द्र—तो महाराज, इसका अर्थ यह है कि गाँठ किस प्रकार पड़ी है यह देखना चाहिये।

गुरुजी—बेशक। इसे देखनेसे मालूम होता है कि जो कर्म हम करते हैं उनसे हमारी वासनायें बनती हैं, और वासनासे पुनर्जन्म होता है, और इस रीतिसे कर्म, वासना और पुनर्जन्मका चक्र चलता ही रहता है।

विचारचन्द्र—तो महाराज, कर्म न करने चाहियें।

गुरुजी—करने ही चाहियें। करना चाहिये यह कहनेकी

ज़रूरत ही नहीं। कृष्ण भगवान गीतामें कहते हैं कि कोई भी मनुष्य एक क्षणभर भी कर्म किये बिना रहता नहीं।

विचारचन्द्र—तो महाराज, यह तो बड़ी कठिनाई आ पड़ी, यदि कर्म किये जाँय तो वे हमें संसारमें डुबा रखते हैं, और न किये जाँय तो यह संभव नहीं। तो फिर क्या करें?

गुरुजी—ऐसा कर्म करना कि जिससे वह कर्म कर्म ही न रहे। (ल... इसे न समझकर घबड़ाये) घबड़ाओ मत। मैं अपने कहनेका अर्थ समझाता हूं। जैसे बिच्छू का डंक निकाल लेनेसे वह बिच्छू बिच्छू नहीं रहता, उसी प्रकार कर्मका जो दोष भाग है, जिसके कारण वह वासना उत्पन्न करता है, उस भागको निकाल डालें तो काफी होगा।

विचारचन्द्र—गुरुजी, वह भाग कौनसा है?

गुरुजी—सकाम बुद्धि—स्वार्थ-बुद्धि जिसके कारण अहङ्कार उत्पन्न होता है। संसारमें जो जो कर्म करने हों वे रागद्वेषसे न करने चाहियें, किन्तु प्रभुकी आज्ञा है इस भावना वा बुद्धिसे ही वे कर्म करने चाहियें, और इस रीति से निष्काम कर्म करनेसे वासनाका अङ्कुर नहीं जमता। पर यह बतलाओ कि ईश्वरकी आज्ञापर चलनेकी इच्छा कब होगी?

विचारचन्द्र—ईश्वरपर जब हमें पूर्ण श्रद्धा होगी।

गुरुजीः—तो इस बातसे यह समझो कि मेरे कहे हुये

निष्काम (स्वार्थ, इच्छा बिना) कर्म करनेके लिये भक्तिकी आवश्यकता है। अब बतलाओ कि भक्ति हमारे मनमें कब उत्पन्न होती है ?

विचारचन्द्र—जब हम यह जान जायँ कि ईश्वरमें ऐसे गुण हैं जिनसे भक्ति उत्पन्न होती है।

गुरुजी—ठीक। पर इसके लिये ज्ञानकी आवश्यकता है। इस प्रकार कर्म, भक्ति और ज्ञानका परमात्माके मार्गमें उपयोग किया जाता है, और वह 'योग' कहा जाता है।

कर्मको परमात्माके मार्गमें लगाना ही 'कर्म योग' है, भक्तिको लगाना 'भक्तियोग' और ज्ञानको लगाना 'ज्ञान-योग' है। इस प्रकार इन उत्तम प्रकारके कर्म, भक्ति और ज्ञानको गीतामें ये तीन नाम दिये गये हैं। तीनों हमारे धार्मिक जीवनमें किस प्रकार उपयोगी होते हैं इसे मैं कुछ विस्तारपूर्वक समझाता हूं।

(१) *कर्म*—यह प्रभुकी आज्ञाका पालन करना है। इससे प्रभु प्रसन्न होते हैं, और अन्तः करण शुद्ध होता है। लेकिन कर्म केवल धार्मिक क्रिया मात्र नहीं, जैसे यज्ञ, दान, तप, व्रत, बल्कि वर्णाश्रमके सभी धर्मोंका अनुष्ठान करना चाहिये—

भक्ति—कर्मके साथ भक्ति चाहिये। कितनी ही दफे कर्म करते करते अर्थात् संसारका अनुभव करते करते ईश्वरका ज्ञान होता है और भक्ति उत्पन्न होती है, पर वह भक्ति हमेशा शुद्ध ही नहीं होती। कितनी ही बार हम

ईश्वरको "हे प्रभु ? हमारे दुःख दूर करो हमारे बाल बच्चोंको सुखी रखो, हमें धन-धान्यकी समृद्धि दो" इत्यादि प्रार्थना करते हैं। पर सच तो यह है कि इस तरहकी भक्ति स्वार्थ वृत्तिकी है। तथापि ईश्वरके नामकी और उसकी प्रार्थनाकी महिमा ऐसी है कि इसके द्वारा भी हम धीरे २ शुद्ध बन जाते हैं और सकाम भक्तिमेंसे निष्काम भक्तिमें आ जाते हैं ॥

ज्ञा —जब हम निष्काम भक्तिमें आ जाते हैं तब हमें ईश्वर सिवाय किसी वस्तुमें भी सुख प्रतीत नहीं होता, और इस कारण ईश्वरके जाननेकी, उसके दर्शन करनेकी हमें तीव्र इच्छा होती है। किन्तु इस इच्छाके उत्पन्न करनेके लिये हमें पहले इतनी सामग्री इकट्ठी कर रखना चाहिये:—

पहला विवेक, अर्थात् यह संसार अनित्य है, ईश्वर नित्य है, यह देह अनित्य है, आत्मा नित्य है इत्यादि ज्ञान होना चाहिये, दूसरा वैराग्य, अर्थात् इस लोकके तो क्या, स्वर्गके भी सुखकी मुझे इच्छा नहीं ऐसी केवल मनोवृत्ति होनी चाहिये। तीसरा शम (मन शान्त रखना), दम (इन्द्रियां बसमें रखना) इत्यादि मानसिक बल और शान्तिके गुण चाहियें। चौथा मुमुक्षुत्व अर्थात् इस संसारसे छूटनेकी इच्छा होनी चाहिये। इनमेंसे हरेक गुण परम आवश्यक है तथापि मुमुक्षुत्व सबसे बड़ा गुण है, क्योंकि यदि यह होगा तो पूर्वोक्त सभीको खींच लायगा ॥

(३८)

षट् दर्शन ।

आनन्द–गुरुजी, आपने कल कहा था कि कितने ही शास्त्रकारोंका ऐसा मत है, और पहले जीवात्मा और परमात्माके सम्बन्धमें बोलते हुए भी आपने इसी प्रकार अमुक मत कितने ही लोगोंका है, यह कहा था। तो महाराज. हमारे शास्त्रोंमें सबका कथन एक ही न होगा?

गुरुजी–जहां तक हो सका, हिन्दू-धर्मके इन तत्वोंके समझानेमें जो तत्व सबको मान्य थे अथवा होने हो चाहिये उन्हें ही मैंने लिया है। लेकिन सभी शास्त्रकारोंका सभी विषयों पर एकसा ही मत और कथन कैसे हो सकता है! हरेकके मस्तकमें जुदी जुदी मति होती है। ऐसी भिन्न भिन्न मतिके कुछ दृष्टान्त मैं तुम्हें दूंगा जिनसे तुम यह भली भांति समझ जाओगे कि जीव, ईश्वर और जगत्के विषयमें ज्ञान उपार्जन करनेमें हमारे पूर्वजोंने कैसा परिश्रम किया था।

वेदमें जो कहा है उसे अनुभव करनेके लिए जुदे जुदे ब्राह्मण शास्त्रकारोंने दर्शन (अर्थात् देखनेके साधन) रचे जो षट् दर्शन कहलाते हैं। हरेक दर्शनका इतिहास इतना लम्बा चौड़ा है कि उनके सिद्धान्तोंमें फेरफार होना स्वाभाविक है, और ऐसा हुआ भी है। तौ भी साधारण

रीतिसे आज कल अमुक सिद्धान्त अमुक दर्शनका है यह माना जाता है। इसके अनुसार मैं तुम्हें उनके सिद्धान्त बतलाता हूं:—

(१) प्रथम *सांख्य-दर्शन* इसके पहले आचार्य कपिल मुनि कहलाते हैं। इस दर्शनका सिद्धान्त यह है कि संसार ताप (दुःख) से भरपूर है, और ऐसा होनेका कारण यह है कि उसमें प्रकृति और पुरुष, जड़ और चैतन्य, ये दो तत्व परस्पर मिल गये हैं। पुरुष (जीव) प्रकृतिसे भिन्न है तथापि अपने आपको प्रकृतिके साथ बांध लेनेसे वह अपने दुःखोंका स्वयं जन्मदाता बन गया है। यह प्रकृति सत्व, रज और तम इन तीन गुणोंकी बनी हुई है, और वे क्रमसे सुख, दुःख और मोह (जड़ता) उत्पन्न करते हैं। इन गुणोंसे छूटना ही मोक्ष है। पुरुष प्रकृतिसे जुदा है यह जान लेनेसे छूटना संभव है। बस, यही प्रकृति पुरुषके मिलने होसे जगत्‌रूप बनती है, जैसे दूधमेंसे दही बन जाता है। अतएव ईश्वरके माननेकी कोई आवश्यकता नहीं।

(२) *योग-दर्शन* इसे पतंजलि मुनिने रचा है। सांख्य दर्शनमें, ईश्वर नहीं माना गया, वह इसमें माना गया है। सभी बातोंमें यह सांख्यके सिद्धान्तोंका स्वीकार करता है, किन्तु प्रकृतिसे पुरुष कैसे छूट सकता है इसकी रीति जो सांख्यमें नहीं बतलायी गयी उसे यह दर्शन बतलाता है। इस दर्शनमें कितने ही उत्तम नीतिके गुण, प्राणायाम, ध्यान

समाधि इत्यादि साधन भली भांति बतलाये गये हैं। सांख्य के साथ योगदर्शनका मतभेद केवल ईश्वरके विषयमें है। अतएव एक निरीश्वर सांख्य और दूसरा सेश्वर सांख्य भी कहा जाता है। इस दर्शनके ईश्वरके विषयमें एक बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि ईश्वर इस जगत्से तथा सभी जीवोंसे सर्वथा भिन्न है, और उसने इस प्रकार सृष्टिको भी नहीं रचा, वह परम विशुद्ध पुरुष है, इतने हीसे वह ईश्वर कहा जाता है।

(३) वैशेषिक दर्शन—इसे महर्षि कणादने रचा है। इस दर्शनके अनुसार-द्रव्य, गुण, कर्म आदि ६ पदार्थ हैं। उदाहरण-यह वृक्ष, उसका नीला रंग, उसके हिलने जुलने की क्रिया, आदि। इनमेंसे प्रथम द्रव्य नौ प्रकारका है पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन। इस जगत्को परमेश्वरने रचा है। जैसे एक चतुर कारीगर ईंट पत्थर आदि चतुराईसे लगाकर सुन्दर महल बना डालता है, वैसे ही पृथ्वी, जल, तेज, वायुके परमाणु कणमें से ईश्वर इस जगत्की रचना करता है। पर जैसे निर्माण कर्ता उन ईंट और महल दोनोंसे जुदा है, वैसे ही जगत्का कर्ता ईश्वर भी इन परमाणुओंसे तथा जगत्से जुदा है अर्थात् इस जगत्को उसने अपनेमे ही से नहीं निकाला किन्तु बाहर रह कर बाहरके पदार्थोंसे इसे रचा है। दूसरी बात यह है कि जीव और ईश्वर दोनों आत्मा हैं लेकिन दोनों एक नहीं।

ईश्वर जीवोंसे जुदा है और जीवोंके कर्मानुसार उन्हें सुख दुःख रूप फल देता है। इस दर्शनका खास उद्देश्य द्रव्योंके धर्म ('विशेष'-खास गुण जिसके आधार पर वैशेषिक नाम पड़ा है) निश्चित करना है। इ प्रकार विशेष धर्मका निश्चय कर, आत्मा इन जड़ द्रव्योंसे जुदा है यह इस शास्त्रने सिद्ध कर बताया है। सांख्यने प्रकृति और पुरुषको जुदा बतलाया दोनोंकी भिन्नता किस रीतिसे अनुभव करना उस रीतिका निरूपण योग-शास्त्रने किया, किन्तु जड़ और चैतन्य जुदे ही हैं इसका विशेष निर्णय इस वैशेषिक दर्शनने किया।

(४) *न्याय*—इसे गौतम ऋषिने बनाया। इसमें सत्य के जाननेके साधन–जिन्हें प्रमाण कहते हैं—निश्चित किये गये हैं। किस रीतिसे किया हुआ अनुमान ठीक हो सकता है, और उसमें कैसी भूलें होना संभव हैं, वे भूलें किस रीति से पकड़ी जाती हैं इत्यादि बातोंकी विवेचना न्याय-शास्त्र में है। वैशेषिक दर्शनमें आत्मा और अनात्माके धर्म जो प्रथक कर बतलाए गये हैं उन्हें इस दर्शनने स्वीकार किया है, और उनके लिए कैसे अनुमान आदि प्रमाण हैं उनका भी निरूपण किया है। इसलिए जैसे, सांख्य और योग एक जोड़ेके हैं वैसे ही वैशेषिक और न्यायका भी दूसरा जोड़ा है।

(५) *मीमांसा*—इसके रचयिता जैमिनी हैं। इसमें वेद के यज्ञभागके वाक्योंका—और उनके आधारपर वाक्यमात्रका अर्थ करनेकी रीति बतलायी गई है।

वेदान्त—इसके रचयिता बादरायण व्यासमुनि थे। वेदका अन्त वा सिद्धान्त उपनिषदोंमे आता है, उनके उपदेशोंपर इस दर्शनमें विचार किया गया है इस कारण यह वेदान्त कहा जाता है। उपनिषदोंमें ब्रह्म वा परमात्माके विषयमें विचार है। उसके सम्बन्धमें ही यह दर्शन है, अतएव यह ब्रह्ममीमांसाके नामसे भी ख्यात है। पहले कर्म और फिर ज्ञान, पहले कर्मका विचार और फिर ब्रह्मका विचार होना चाहिये, इस कारण जैमिनीकी मीमांसा पूर्वमीमांसा और वेदान्त उत्तर मीमांसाके नामसे पुकारी जाती है। अतएव ये दोनों मीमांसायें षड्दर्शनोंमें एक जोड़े की है, किन्तु यदि इन दोनों दर्शनोंके सिद्धान्तोंका आपसमे मिलान करें तो इनमे बहुत मतभेद मालूम होता है। एक ईश्वर नहीं मानता, दूसरा सब कुछ ईश्वररूप ही मानता है, एक कर्मको ही साधन मानता है, दूसरा ज्ञानको मानता है, और कर्मको ज्ञानके साथ रखता है अथवा उसे ज्ञानका विरोधी मानता है। इस दर्शनमें मुख्यतया परमात्मा और जीवात्मा उनका परस्पर सबन्ध, परमात्माको प्राप्त करनेके साधन मोक्षकी स्थिति इत्यादि अनेक महत्वके विषयोंपर विचार किया गया है। इसके सिद्धान्तों पर हिन्दूधर्म अवलम्बित

है, और इस कारण हमारे शिक्षणमें वेदान्तके सिद्धान्तोंका अधिकांशमें उपयोग किया गया है।

सब दर्शनोंमें वेदान्त दर्शनका ऐसा महत्व है कि अनेक आचार्योंने इस पर 'भाष्य' कहलाने वाला गंभीर अर्थसे भरपूर टीकायें लिखीं हैं। ऐसे भाष्यकारोंमें मुख्य तीन है, शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, और वल्लभाचार्य इनके सिद्धान्त मैं तुम्हें संक्षेपसे कह जाता हूं :

शंकराचार्यके अनुसार—

(१) कर्म और भक्तिसे चित्त शुद्ध होता है. किन्तु इस संसारमेंसे मुक्ति पानेका साधन तो ज्ञान ही है।

(२) "ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है, जीव तो वास्तवमें ब्रह्म ही है"—इस प्रकारका अनुभव ही ज्ञान है।

(३) इस ज्ञानके प्राप्त करनेके लिए संन्यास आवश्यक है। जिस घड़ी सच्चा वैराग्य हो तभी यह संन्यास लिया जा सकता है, गृहस्थाश्रम करना भी आवश्यक नहीं।

रामानुजाचार्यके सिद्धान्तके अनुसार—

(१) परमात्मा निर्गुण नहीं, किन्तु समस्त शुभ गुणोंसे भरपूर है। सृष्टिके जड़ चेतन पदार्थ और चेतन जीव उसके शरीरके अङ्ग हैं। यह शरीर ही परमात्मका विशेषण, और परमात्मा इस शरीररूपी विशेषणसे विशिष्ट है इस शरीर विशिष्ट परमात्माके सिवाय और कोई वस्तु नहीं। इस कारण इस सिद्धान्तका नाम विशिष्टाद्वैत है।

१०

(२) कर्म और आत्म-ज्ञान ये दोनों मिलकर भक्ति उत्पन्न करते हैं; और भक्ति ही परमात्मा तक पहुंचनेका साधन है, भक्ति ही ज्ञान है, किन्तु इसके साथ कर्म हमेशा करते रहना चाहिये।

वल्लभाचार्यके सिद्धान्तके अनुसार—

(१) जैसे अग्निमेंसे चिनगारियां निकलती हैं अथवा जैसे मकड़ियां अपनेही मेंसे जाला निकालती हैं वैसे ही ब्रह्ममेंसे यह जड़ सृष्टि और जीव निकले हैं। ये जीव और जड़ सृष्टि शुद्धब्रह्म ही हैं, और शुद्धब्रह्मके सिवाय और कुछ वस्तु नहीं, इसलिये यह सिद्धान्त 'शुद्धाद्वैत' कहलाता है।

(२) ज्ञान और वैराग्य ही भक्तिके साधन हैं, परमात्मा के पानेके लिए अन्तमें भक्ति ही चाहिये। भक्ति विविध प्रकार की है। इसमें प्रेमलक्षणा भक्ति उत्तम है। शास्त्रके नियम पालन कर ईश्वरका भजन करना मर्यादा मार्ग है, और प्रभुके ही आश्रित रहना और उसे अपने आपको सौंप देना-जिससे वह हमारी भक्तिको पुष्ट करता रहे—यह पुष्टि-मार्ग है।

इस प्रकारके हमारे शास्त्रकार और आचार्योंके विविध मत हैं। इन विविध मतोंसे हमें घबड़ाना न चाहिये। सभी हमें कुछ न कुछ सिखाते हैं और इन मतोंमेंसे ही हमें यह दृढ़ विश्वास होता है कि-

रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषाम् ।
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥

जुदी जुदी रुचिके कारण मनुष्य सीधे, टेढ़े आदि जुदे जुदे मार्गका अवलम्बन करते हैं-किन्तु उन सबके पहुंचने का स्थान-हे प्रभु ! तुही है, जैसे जलके लिये समुद्र नद्वत् ।

---

(३९)

जैन तीर्थंकर ।

चन्द्रशेखर—गुरुजी आपने कल मनुष्योंके स्वाभाविक मतभेदके कितने ही दृष्टान्त दिये । वे सब आचार्य भिन्न भिन्न समयमें हुये, वे इकट्ठे बैठकर किस रीतिसे निर्णय कर सकते थे ? लेकिन मेरे मनमें यह बात आती है कि यदि ऐसा हो सकता तो बहुत ही अच्छा होता । सबके लिये एक ही मार्गका निर्णय होता, और आजकल जो झगड़े होते हैं वे न होते ।

गुरुजी-तुम्हारा कथन ठीक है । जैसे बने वैसे हमें एक दूसरेकी समानता देख एकता बढ़ानी चाहिये इसमें ही भलाई है, किन्तु सबके लिये एक ही मार्ग होना तो अच्छा है यह मानना उचित नहीं । अज्ञानका किला ऐसा विशाल और दुर्भेद है कि उसपर तो हजारों बहादुर सिपाही चारों ओरसे, जुदी जुदी दिशाओंसे, हमला करें तभी वह जीता

जा सकता है। सिपाहियोंकी एक सीधी अखण्ड पंक्ति एक किलेके हमलेमें कृतकार्य्य नहीं हो सकती। दूसरा उदाहरण लीजिये। यदि सरकार यह हुकुम दे कि इस नर्मदा नदीके सैकड़ों मील लम्बे किनारेपर रहनेवाले सभी ग्रामवाले एक ही ठिकानेसे नदी पार उतरे तो तुम उस हुकुमकी बाबत क्या कहोगे? इसी प्रकार यह समझना चाहिये कि इस संसार रूपी अज्ञानकी नदीके पार करनेके लिये ही महापुरुषोंने अनेक घाट बनाये है। अनेक छोटी बड़ी नावें चला करती है—इनका हम अपनी अनुकूलता और आवश्यकताके अनुसार लाभ उठावें इसमें ही भला है। एकबात स्मरण रखना कि सबको सामनेके किनारे पर ही जाना है, कहांसे जाना और किस रीतिसे जाना इसे हमें अपने स्थान और स्थिति आदि देखकर निश्चित करना चाहिये। आज मैं ऐसे ही एक बड़े घाट बनानेवाले और नदी पार करनेके छोटे बड़े अनेक साधनोंके अविष्कार करनेवालेके विषयमें, तुम्हारे समक्ष वार्तालाप करूंगा। पहली दी हुई उपमाके अनुसार, आज मैं अज्ञानके किलेपर घोर आक्रमण करने वाले एक महान सेनापति और उसके शस्त्रके बारेमें कुछ बातचीत करना चाहता हूं। बालको. यह कहो कि तुम्हें हिन्दू-धर्मकी व्याख्या तो याद है न?

चन्द्रशेखर—हां महाराज, सिन्धु और गंगा-जमुनाके प्रदेशमें जो धर्म उत्पन्न होकर वहांसे फैला वही हिन्दू धर्म है।

गुरुजी-ठीक। मुझे आशा है कि तुम्हें यह भी स्मरण होगा कि इस भूमिमें जैसे इन्द्र वरुण आदि देवताओंकी स्तुति और उनके निमित्त यज्ञ होते थे, वैसेही इन सब देवताओंमें विराजमान परमात्मा कैसा है, और वह किस रीतिसे मिल सकता है इसके विचार करनेमें बहुत स्त्री पुरुष संलग्न थे। इनमें कितने ही जनक राजा जैसे राजकाज करते थे और कितने ही शुकदेवजी जैसे परमहंस-संन्यासी होकर रहते थे। इस पिछली तरहके दो अवतारसदृश महापुरुष (महावीरस्वामी और गौतमबुद्ध) ऐतिहासिक कालमें वि० सं० पूर्व ५०० वर्ष ऊपर गंगाके प्रदेशमें हुये थे, उनमें पहले महावीर स्वामी थे। उनका उपदेश किया हुआ धर्म "जैन धर्म" कहलाता है। जैन शब्द 'जिन' शब्दसे ही बना है (जिन अर्थात् जीतनेवाला इस संसार रूपी मोहके गढ़का जीतनेवाला)। उन्होंने इस संसाररूपी नदीके पार करनेका पुल बनाया तथा उसे तरनेके लिये शास्त्ररूपी छोटे मोटे साधन रचे इसकारण वे तीर्थंकर भी कहलाते हैं।

(४०)

ऋषभदेव और महावीरस्वामी

जैन धर्ममें २४ तीर्थंकर हुये कहलाते है, उनमें पहले ऋषभदेवजी और पिछले महावीरस्वामी हुये। ऋषभदेव

अत्यन्त प्राचीन कालमें हुये थे, और ब्राह्मणलोग भी उन्हें विष्णुके २४ अवतारोंमेंसे एक मानते हैं, और उनके वैराग्य, तप और परमहंस वृत्तिकी बड़ी प्रशंसा करते हैं। जैनशास्त्रोंमें कहा है कि उनके समयमें लोग लिखना पढ़ना न जानते थे; इतना ही नहीं बल्कि भोजन बनाना आदि सभ्य मनुष्योंके साधरण कर्म भी वे न जानते थे। ऋषभदेवजीने गद्दीपर आकर उन्हें ये सब बातें सिखाईं और लेखन, गणित, पाकशास्त्र आदि अनेक विद्यायें और कलायें उन्हें बतलाईं। वृद्ध होनेपर अपने लड़कोंको राज्य बांटकर वे तप करने निकले और आत्माका स्वरूप पहिचानकर 'केवली' हुये, अर्थात् परमज्ञानकी दशामें पहुंचे।

महावीर स्वामी भी इसीभांति एक क्षत्रिय राजकुमार थे। बालकपनसे ही उनकी वृत्ति वैराग्यकी ओर थी परन्तु इसके साथ ही वह वृत्ति इतनी कोमल थी कि अपने प्यारे मातापिताको छोड़ उनका मन दुखाकर एकदम साधु हो जाना उन्हें पसन्द न पड़ा। इसलिये उन्होंने गृहस्थाश्रममें प्रवेश किया, लेकिन मातापिताके मरनेपर अपने बड़ेभाईकी आज्ञा लेकर ३० बरसकी उमरमें वे साधु हुये। वे साधु होकर विचरने लगे। उससमयके उनके परिग्रह (साथ ली हुई वस्तु) के विषयमें दो मत हैं। कुछ लोग यह मानते हैं कि वे पहले ही से दिगम्बर रहे थे और पाणिपात्र थे, अर्थात् हाथमें ही भिक्षा लेते थे। दूसरे लोग यह कहते हैं उन्होंने पहिली

भिक्षा तो पात्रहीमें ली थी, और इसलिये साधुओंको ऐसा करना ही उचित है; फिर दीक्षा लेनेके समय इन्द्रके दिये हुये वस्त्र भी कुछ समयतक उन्होंने रखे थे, इसलिये साधुओंको भी आवश्यक वस्त्र रखना उचित ही है। वह वस्त्र उनके शरीरसे किस प्रकार उतरा इस संबन्धमें यह कहा जाता है कि उन्हें एक दरिद्र ब्राह्मण रास्तेमें मिला जिसे आधा वस्त्र फाड़कर उन्होंने देदिया। फिर वह ब्राह्मण दरजीके पास उस कपड़ेकी कोर लगवाने गया। वहां दरजीने उससे कहा कि कपड़ा बहुत कीमती है, और इसका दूसरा आधा हिस्सा ले आ तो मैं दोनोंको मिलाकर एक उत्तम वस्त्र बना दूंगा। ब्राह्मण फिर महावीर स्वामीके पास गया, लेकिन अब दूसरा कैसे मांगु इसतरह मन ही मन संकोच करता हुआ वह स्वामीजीके पीछे होलिया। इतनेमें वह शेष आधा वस्त्र कांटोंमें उलझ गया। स्वामीजीने उसे कांटोंसे न निकाला। फिर ब्राह्मणने उसे लेलिया। उस समयसे महावीर स्वामी बिलकुल दिगम्बर रहे। इन दो बातोंमेंसे सत्य जो कुछ भी हो, लेकिन इतना निर्विवाद है कि महावीर स्वामीका वैराग्य बहुत तीव्र था। दीक्षा लेनेके बाद १२ बरस उन्होंने तपमें बिताकर उत्तम ज्ञान प्राप्त किया, और तत्पश्चात् ३० वर्ष धर्मोपदेश कर निर्वाण पाया। अपने संन्यासकी दशामें वे जिस भागमें मुख्यतया फिरा करते थे वह अब भी उनके बिहार करनेके कारण 'बिहार' नामसे कहा जाता है।

(४१)

जैन धर्मका मुख्य उपदेश ।

धर्मचन्द्र—गुरुजी जैन धर्ममें ऐसे कौनसे तत्व हैं जिनके बारेमें उनके सभी शास्त्रोंका एक मत है ?

गुरुजी—आज मैं यही कहनेवाला था :

(१) अहिंसा- 'अहिंसा परमो धर्मः'-अहिंसा यह बड़ासे बड़ा धर्म है, यही जैन धर्मका बड़ासे बड़ा सिद्धान्त है। इस धर्मके सभी आदेश और सारे आचार विचार अहिंसा के आधारपर स्थित हैं। जैन धर्ममें न सिर्फ यज्ञादिकमें या सामान्य खान पानमें हिंसाका निषेध किया गया है, बल्कि मनुष्यकी सभी क्रियाओंको बारीकीसे खोजकर इनमें कहां कहां हिंसाका प्रसङ्ग आता है यह भलीभांति दिखलाया गया है। हिंसाके कारण मनुष्यकी क्रियाओंमें बाधा पड़नेपर यदि और कुछ न बन पड़े, तो हिंसा जहांतक कम हो सके होनी चाहिये. इस संबन्धमें जैन धर्ममें मार्ग खोज निकाले गये हैं, अर्थात् जिन प्रसङ्गोंमें हिंसा अपरिहार्य हो उनमें भी वह न्यूनातिन्यून किस प्रकार हो सकती है इत्यादि बातोंका विवेचन किया गया है। जैन धर्ममें 'षट् जीवकाय' (१) पृथ्वी, (२) जल, (३) तेज, (४) वायु, (५) वनस्पति, और (६) त्रस (जंगम प्राणी जो त्रास, भय, दुखकर एक स्थलसे दूसरे स्थलमें जा सकता है), इस प्रकार छः तरहके जीव माने गये हैं और उनकी रक्षाके लिये उपदेश किया गया है।

जैन धर्मका दूसरा बड़ा आग्रह तपके लिये है। उपवासादिक । शरीर और इन्द्रियोंका दमन करना वे आवश्यक समझ ते हैं। वे मनकी वृत्तियोंका जय निष्फल नहीं मानते और न उसे कुछ कम महत्व देते हैं, तथापि देहका और मनका ऐसा गाढ़ संबन्ध है कि देहके और इन्द्रियोंके दमन बिना मनका जीतना असंभव है यह उनका मत है। इस कारण जैन धर्ममें उपवास करना बहुत ही आवश्यक है। साधु होनेके पहले जो केशलुंचनकी विधि है वह भी इस तपकी योग्यताकी परीक्षाके ही लिये है।

(३) वैराग्यपर भी जैन लोग बहुत ज़ोर देते हैं। उनकी दृष्टिसे मनुष्यका परमपुरुषार्थ व्यावहारिक-इस संसारका-समृद्धि नहीं किन्तु कैवल्य स्थिति या निर्वाण अथवा शान्ति है

(४) जैन जगतको अनादि मानते हैं और यह भी कहते कि कर्मके महानियमसे सबकुछ चलता है। मनुष्य किये कर्मके भोग भोगे बिना छूट नहीं सकता, और जैसा करूंगा वैसा पाऊंगा इस सिद्धान्तपर, जो हिन्दू धर्मकी ब्राह्मण शाखाका भी है, जैनोंका दृढ़ विश्वास है, और इसे वे बड़ी ख़ूबीसे समझाते हैं॥

(५) वे जगत्के कर्ता ईश्वरको नहीं मानते लेकिन ऋषभदेव आदि रागादि दोष रहित और लोकके उद्धारक जो तीर्थंकर हो गये हैं उनकी वे भगवानकी तरह पूजा करते हैं॥

इसके सिवाय जैन धर्मके तत्वज्ञानमें '*स्याद्वाद*' नामका एक बड़ा सिद्धान्त है। इसका तत्पर्य यह है कि कोई भी वस्तु इस प्रकारकी है वा उस प्रकारकी है इस तरह एकही रूपसे निरूपण नहीं की जा सकती। एक वस्तु एक रूपमें हो, दूसरे रूपमें न हो, एक स्थलमें हो और दूसरे स्थलमें न हो, एक कालमें हो और दूसरे कालमें न हो इत्यादि। इस प्रकार एकही वस्तु जुदी जुदी रीतिसे देखते हुये जुदी जुदी तरहकी मालूम होती है। यह बात ध्यानमें रखनेसे आपसके मतभेदके झगड़ोंका नाश हो जाना संभव है। यह सिद्धान्त जैनधर्मकी महत्वपूर्ण गवेषणाका फल है।

(४१)

जैनव्रत, समायिक, प्रतिक्रमण।

गुरुजी—बालको, अमुक मनुष्य का जीवन धार्मिक है वा नहीं इसकी खरी कसोटी उसका चरित्र—उसकी नीति है। वह चरित्र ज्ञानसे बनता है, और वह ज्ञान शास्त्रोंके देखनेसे मिलता है। तदनुसार जैन धर्ममें, 'दर्शन' 'ज्ञान' और 'चरित्र' ये 'तीन रत्न माने गये हैं।

अब, सुन्दर चरित्र-गठनके लिये पांच व्रत अर्थात् नियमोंका पालन करना चाहिये। वे निम्न प्रकारके हैं:—

(१) अहिंसाव्रत—अर्थात् हिंसा न करना, अर्थात् 'प्राणा-

तिपात'—हिंसाका दोष—न हो यह देखना चाहिये। छोटे बड़े स्थावर जङ्गम किसी भी जीवकी मन वचन कामसे कभी भी हिंसा न करना, न कराना, कोई करता हो तो उसका अनुमोदन भी न करना।

(२) सत्यव्रत,—असत्य न बोलना। मन वचन कार्य से, क्रोधसे, लोभसे, भयसे, हंसीमें भी कभी झूठ न बोलना, न बुलवाना और न उसका अनुमोदन ही करना

(३) अस्तेयव्रत—चोरी न करना, बिना दी हुई वस्तु न लेना। मन वचनसे छोटी बड़ी कोई भी वस्तु बिना दी हुई न लेना, न किसीको लेने देना और न लेनेका अनुमोदन करना।

(४) ब्रह्मचर्यव्रत—मन वचन कार्यसे, किसी तरह भी ब्रह्मचर्य न तोड़ना, न तुड़वाना, न तोड़नेका अनुमोदन न करना

(५) अपरिग्रहव्रत-परिग्रह न करना—अर्थात् अपने आस-पास वस्तुएं न रखना, न रखवाना, न रखनेका अनुमोदन करना। गृहस्थको जहां तक हो सके कम वस्तुएं रखना चाहिये और उन्हें धीरे धीरे घटाकर अन्तमें साधु होकर छोड़ देना चाहिये।

अब बालको, यह बतलाओ कि ये अहिंसा सत्य आदिके नियम तुमने किसी दूसरे स्थलमें पढ़े हैं।

गोविन्द—हां महाराज, उस दिन इन दीवारोंपर सामान्य धर्मके लेख लटकाये गये थे, उनमें मैंने कुछ ऐसा ही पढ़ा था।

गुरुजी—तुम्हें ठीक याद है। ये व्रत वेदधर्मकी

बहुत पुस्तकोंमें (मनुस्मृति, योगसूत्र आदिमें) उल्लिखित हैं और जैन धर्ममें भी ये माने गये हैं। इसका कारण यह है कि ये सब मूलमें एकही हैं, किन्तु जैन शास्त्रकारोंने इनका जो ठीक ठीक और सूक्ष्म विवेचन किया है वह देखने ही योग्य है। मन, वाणी और कायके कर्म ऐसे तीन भेद इनमें रखे हैं, और करना कराना और अनुमोदन करना इस प्रकारसे उन भेदोंके और भी अवान्तर भेद किये गये हैं। जैसा होनेसे, हिंसा, झूठ चोरी आदिके विचार मनमें आना, अथवा कोई ऐसे विचार करता हो उन्हें पसन्द करना यह भी मनुष्यको पापका भागी बनाता है। इस बातकी ओर जैन पण्डितोंने हमारा अच्छी तरहसे ध्यान खींचा है।

इसके अलावा जैन धर्ममें मन तथा इन्द्रियोंको धर्म मार्गमें प्रेरित करनेवाली आवश्यक क्रियाओंमें भगवानोंकी स्तुति-वन्दनाके साथ (१) सामायिक और (२) प्रतिक्रमण हैं।

(१) *सामायिक*—मनको समता सिखाना चाहिये। इस संसारमें सब वस्तुएँ हमें इच्छानुसार कैसे मिल सकती होगी, बाग है? ठंड भी होगी धूप भी होगी जाड़ा भी होगी गर्मी भी बगीचे भी होंगे और कांटे झाड़ भी होंगे—संक्षेपमें सुख भी होगा और दुःख भी होगा, तथापि सुख दुःखमें मनको डामाडोल नहोने देकर उसे समताकी दशामें रखना चाहिये। प्राणिमात्रपर एकसा भाव रखना चाहिये। इसके लिये हरेक

जैनको हमेशा दो घड़ी चित्तको स्थिर रखकर स्वाध्याय और ध्यान करनेकी आज्ञा है। यह 'सामायिक' अथवा समताके अनुशीलन करनेकी विधि है।

(२) ऐसी ही दूसरी आवश्यक क्रिया 'प्रतिक्रमण' है। इसका तात्पर्य यह है कि मनुष्यको अशुभ एवं पापसे पीछा फिर कर, शुभ और पुण्यकी ओर चलना चाहिये।

मनुष्य दिन रातमें जाने अनजाने कुछ न कुछ पाप किये बिना नहीं रहता, लेकिन सांझ सबेरे अपने पापोंका विचार कर जो हो गया उसके लिये मनमें पश्चात्ताप कर, भविष्यमें यदि वह वैसा न करनेका निश्चय करे तो इससे उसका जीवन बहुत सुधर जायगा। इस लिये जैन शास्त्रकारोंने 'प्रतिक्रमण' अर्थात् पापोंका स्वीकार कर पुण्य मार्गपर चलनेका विधान किया है। रात और दिनके विभागानुसार दो प्रतिक्रमण होते हैं। रातका सवेरे और दिनका सायंकालको, प्रतिक्रमण किया जाना चाहिये।

(४३)

जैन बन्ध और मोक्ष।

गुरुजी-बालको, देखो, यह तालाब कैसा सुहावना मालूम होता है!

आनन्द—महाराज, बहुत सुहावना है, आज हम लोग यहीं बैठें?

गुरुजी–अब यहां बैठनेमें कोई हरकत नहीं। पहले इस जगह बहुत दुर्गन्ध आती थी किन्तु राजाके हुकुमसे गाँवका मैला पानी तालाबमें जानेसे रोक दिया गया है, क्योंकि उससे तालाब बिगड़ता था और रोग फैलता था। सब तालाबके किनारे बैठे।

गुरुजी–बालक, इस तालाबकी बातसे मुझे जैन धर्मका एक सिद्धान्त याद आता है। उस सिद्धान्तकी संज्ञा *आस्रव और संवर* है। आत्मामें कर्मका बहना यह आस्रवका सरल अर्थ है। जैसे गाँवका मैला पानी नालोंमें होकर तालाबमें बहता है और उसे मैला कर डालता है, वैसेही इस संसारके विषय इन्द्रिय आदि नालोंमें होकर, आत्मामें प्रवेश करते हैं और आत्माको विगाड़ देते हैं। एक दूसरा दृष्टान्त यह दिया जाता है कि जैसे भींगे वस्त्रपर धूल आ पड़ती है और उसे चिपट जाती है वैसेही क्रोध, अभिमान आदि दुष्ट वृत्तियोंसे लिप्त आत्माको इस संसारके कर्म चिपट जाते हैं। इन दुष्ट वृत्तियोंको कषाय (मैल) कहते हैं। कषाय चार प्रकारके हैं–क्रोध, अभिमान, माया (कपट) और लोभ।

आस्रवको अच्छी तरह रोक दे वह संवर है, अथवा आस्रव अर्थात् प्रवाहका द्वार ही जो बन्द कर सके उसे संवर कहते हैं। कर्मरूपी बन्धनोंसे मोक्ष पानेके लिये संवर करना अर्थात् आस्रवको रोकना चाहिये, किन्तु आस्रवके रोकनेही

मात्रसे हमारे कर्त्तव्यकी इतिश्री नहीं। नये कर्मोंके विषयमें आस्रवका करना उचित है, किन्तु पुराने कर्मोंका बीजनाश करनेके लिये संवरके साथ 'निर्जरा' की आवश्यकता है। निर्जरा अर्थात् उत्पन्न हुये कर्मोंका तप उपवासादिक साधनों द्वारा छिन्न भिन्न करना 'निर्जरा' है। ऐसा करनेसे अन्तमें संसार रूपी बन्धन नष्ट हो जाते हैं और हमें मुक्ति मिलती है।

(४४)

गौतम बुद्ध

गुरुजी—जैन तीर्थंकर महावीर स्वामीके ही समय-में किन्तु उनसे कुछ पीछे-ई.सं. पूर्व छठी शताब्दी में बौद्ध-धर्म—हिन्दू धर्म की तीसरी शाखाके-प्रवर्तक भगवान गौतम बुद्ध हुये। उनके समय तक प्राचीन वेद धर्ममें अनेक फेरफार होचुके थे। एक ओर जनसमाजमें कहीं कहीं ज्ञान, भक्ति और वैराग्यका उपदेश फैलरहा था, उसके साथ ही दूसरे ओर प्रजाके अधिक भागमें कर्मकाण्डके जाले भी बहुत पुरे हुये थे, और कवि, भक्त, ज्ञानी और साधुओंके स्थान टीकाकार, वादविवादी कर्मकाण्डी और मूर्ख तपस्वियोंने ले लिये थे। ऐसे समयमें धर्मपरित्राण के महानियमका अनुसरण कर (*जब २ धर्मका नाश होता है और अधर्मका उदय होता है तब धर्मका फिर उद्धार करनेके लिये मैं अवतार*

लेता हूं) इस गीतामें कहे हुये भगवानके वाक्यके अनुसार श्री गौतम बुद्धका अवतार हुआ। 'बुद्ध' अर्थात् बोध पाये हुये, जागे हुये ज्ञानीको कहते हैं। संसारमें अज्ञानी मनुष्य ही सोये हुए मानने चाहियें, और ज्ञानी लोग ही सचमुच जागे हुये समझने चाहियें। इस कारण उन्हें 'बुद्ध' का विशेषण देना यथार्थ ही है। ब्राह्मण धर्ममें विष्णुके चौबीस अवतार और जैन धर्ममें चौबीस तीर्थंकर हैं वैसेही बौद्धधर्ममें चौबीस बुद्ध हैं इन २४ बुद्धोंमें केवल गौतम बुद्धके जीवन चरित्रके विषयमें ऐतिहासिक प्रमाण मिलते हैं जिनका वर्णन मैं तुम्हें कर सुनाता हूं। गंगाके उत्तर प्रदेशमें हिमालयकी दक्षिण तलेटीमें कपिलवस्तु नामका गाँव था। वहां ई. सं. पूर्व छठे शतकमें शुद्धोदन नामका राजा राज्य करता था। उसके यहां, रानी की बड़ी अवस्थामें राजकुमारका जन्म हुआ। मातापिताकी पुत्रकी इच्छा सफल हुई-सिद्ध हुई- इसलिये उनका नाम सिद्धार्थ रखा। वे गौतम गोत्रके होनेके कारण गौतम कह लाये,। और कालान्तरमें इस संसाररूपी अज्ञानकी निद्रामें से वे जागे इसलिये बुद्ध यह आदरणीय विशेषण उनके नामके साथ प्रयोग किया गया। योग्य अवस्था होनेपर यशो धरा नामको एक राज्य-कन्यासे उन्होंने विवाह किया, और उससे राहुल नामका एक पुत्र हुआ। तबसे २९-३० वर्षतक का उनका हाल हम नहीं जानते, लेकिन हम सहजहीमें अनुमान कर सकते हैं कि वह समय युवा-

वस्थाके अनेक सुख भोगनेमें व्यतीत हुआ होगा। परन्तु गौतमबुद्धकी आत्मामें पवित्र संस्कार थे, वे इन्द्रियोंके सुखमें लिप्त न हो सकते थे। लोग कहते हैं कि बालकपनसेही उनके पिताको एक ज्योतिषीने कहा था कि यह कुमार आगे चलकर एक भारी संन्यासी होगा। राजाको यह भविष्यवाणी अच्छी न लगी, और इस कारण उसने संसारके सुखसे भरे हुये एक महलमें ही उनके बहुत कालतक रहनेका प्रबन्ध कर दिया। यह कहा जाता है कि एक दिन वे रथमें बैठ बाहर फिरने निकले, वहां उन्होंने एक बूढ़े आदमीको, जिसकी कमर झुक गई थी, आखें बैठ गई थीं, मुंहसे लार टपकती थी, चलनेमें ठोकर लगती थी। इत्यादि बुढ़ापेके अनेक दुःखोंसे दुःखी देखा।

राजकुमार जिनका समय आजतक ऐश आरामकी सामग्रीसे भरपूर एक एकान्त राजमहलमें बीता था, इन सब दृश्योंसे बहुत ही चकित हुये। जब उनके सारथिने उन्हें समझाया कि ये वस्तुऍं—जरा व्याधि और मरण—तो संसारमें बहुत साधारण हैं, तब उनके पवित्र मनमें तीव्र वैराग्य उत्पन्न हुआ लेकिन उन्हें क्या करना चाहिये यह न सूझता था। एक बार वे फिरने निकले, वहां उन्होंने सामान्य पोशाकसे एक जुदीही तरह की पोशाकवाला मनुष्य देखा, उसे देख उन्होंने सारथिसे पूछा 'यह किस तरहका मनुष्य' है? सारथिने उत्तर दिया कि यह संन्यासी है। राजकुमारने पूछा कि सन्यासी

किसे कहते हैं ! सारथिने कहा कि जो संसारको दुःखरूप समझकर उसे छोड देता है वह संन्यासी कहा जाता है। गौतमने यह सुन संसार छोड़ कर चलेजानेका विचार किया, और इसके साथ दुःखके निवारण का उपाय भी ढूंढ़ निकालनेका निश्चय किया। रोजके रिवाजके अनुसार रात्रिके गान तान हो चुकनेके पश्चात् सिद्धार्थ शयन-गृहमें गये, किन्तु निद्रा न आई। रानी यशोधरा और बालक राहुल सोये पड़े थे, वे उनके पास गये। बालकको उठाकर उससे मिलनेका उनका मन हुआ, लेकिन रानीका एक हाथ बालकपर पड़ा था, उसे उठाकर यदि बालकको लेने जायँ तो रानी जाग उठेगी, जाग उठने पर फिर वह अपने प्यारे पतिको संसार कैसे छोड़ने देगी ! न छोड़ने दे तो फिर क्या करना इत्यादि इस प्रकारके अनेक विचार उनके मनमें आने लगे। अन्तमें सब संकल्प, विकल्प, छोड़, अपने तथा असंख्य जीवोंके कल्याणके लिये सिद्धार्थ यशोधरा और राहुलको ज्योंका त्यों छोड़, महलसे एक सफेद घोड़ेपर सवार हो चल दिये। यह बड़ी घटना—सिद्धार्थके जीवनकी एवं जगतके इतिहासकी यह महत्वपूर्ण घटना—बौद्ध-धर्मके शास्त्रों में *महाभिनिष्क्रमण* के नामसे प्रथित है !

सिद्धार्थ रातों रात घोड़े पर बहुत दूर निकल गये। एक नदी के किनारे वे घोड़ेपरसे उतरे, और तलवार निकाल उससे अपने हाथसे अपने सुन्दर केश काट डाले, तथा

अपने आभरण और वस्त्र उतार कर घोड़ेवाले को दे दिये। उसे कपिलवस्तुकी तरफ वापिस भेज वे साधुके वेषमें आगे चले। थोड़े समय तक पासकी आमकी वाटिकामें रहकर मगधकी राजधानी राजगृहकी ओर वे चल पड़े। वहां के राजाने उनका सम्मान किया और उनसे आचार्य पद स्वीकार करनेके लिये कहा, लेकिन उन्होंने इस पदके लिये अपनी योग्यता न मानरक्खी थी इस कारण उसे स्वीकृत नहीं किया। फिर उन्होंने ब्राह्मणोंके पास तत्वज्ञानका अध्ययन किया, लेकिन उनके सिद्धान्तोंसे सिद्धार्थका सन्तोष नहीं हुआ, इसलिये वे आगे चले। एक ठिकाने कितने ही ब्राह्मणोंको यज्ञमें पशुओंका होम करते हुए देखा, यह तो उनकी दयार्द्र आत्माको अतीव घृणित लगा। गया नामक गाँवमें जाकर उन्होंने तप आरम्भ किया। ६ बरस तक कठोर तपश्चर्या करनेसे उनका शरीर काष्ठवत् सूख गया और निर्बलता बढ़ गयी। एक समय वे पासकी नदीमें नहाने गये थे, वहां उन्हें पानीमेंसे उठना भी भारी हो गया। अन्तमें किनारेपरके वृक्षकी डाल पकड़ वे खड़े हुए और आश्रमकी ओर चले, किन्तु चल न सके। रास्तेमें वे बेसुध हो गिर पड़े। एक कन्या पास होकर जा रही थी उसने उन्हें दूध पिलाया और आश्रममें पहुंचाया। इतनी देह कष्ट उठानेपर भी संसारके दुःखका निदान—वैद्य जिस भांति रोगका कारण खोज निकालता है उस-तरह-और उस

दुःखके निवारण करनेका उपाय उन्हें कुछ भी न सूझा। अत्यन्त भोग विलाससे जैसे सत्य नहीं मिलता वैसे ही अत्यन्त देहकष्ट सहन करनेपर भी वह नहीं सूझता। अन्तमें 'मध्यम प्रतिपदा' का सिद्धान्त-अर्थात् बीचका माग ही सर्वथा श्रेष्ठ है यह उनकी समझमें आया। अबसे शरीरके पोषणार्थ कुछ अन्न लेने लगे, गई हुई शक्ति फिर आगई। एक रात्रिके समय गयाके पास एक वृक्षके नीचे ध्यान करते वे बैठे हुए थे। आज तक जिस सत्यके खोजनेके लिये उन्होंने अनेक कष्ट सहे थे उसका उनकी अन्तरात्मामें सहसा ज्वलन्त प्रकाश हुआ। उन्हें ज्ञान हुआ, वे जाग पड़े, वे बुद्ध हुए। इस समय उनकी उमर ३५ वर्षकी थी।

'मैं तो जागा, लेकिन जगत्को जगाऊं तभी मेरा कल्याण होगा' इस प्रकार विचारकर वे उठे और काशीकी तरफ चल पड़े। जिन ब्राह्मणोंने पहले यह निश्चय किया था कि इस तपोभ्रष्ट साधुको प्रणाम न करेंगे वे इस समय उसके ज्ञानके तेजसे खिचकर सामने गये और उनका सत्कार किया। बुद्ध भगवानने उन्हें 'चारआर्य-सत्योंका'—जो सत्य उस ध्यानकी रात्रिमें एक एक पहरके बाद उन्हें प्रकाशित हुए थे—उपदेश किया। और तभीसे धर्मचक्र प्रवर्तनका आरम्भ हुआ। पासके गाँवोंमेंसे बहुत लोग उनका उपदेश सुननेके लिये आने लगे। उनके शिष्योंकी संख्या बढ़ने लगी। तबसे ४५ वर्ष तक बुद्ध भगवानने धर्मचक्र चलाया।

वह धर्म-चक्र कालक्रमसे भारतके बाहर भी चला। ठेठ चीन, तिब्बत, मंगोलिया, जापान, मिश्र, पैलेस्टाइन, लंका ब्रह्मदेश, सुमात्रा, जावा आदि देशोंमें हिन्दु-धर्मकी यह बड़ी शाखा फैल गयी। बुद्ध भगवानने अनेक ब्राह्मणोंको, सच्चा ब्राह्मणपना क्या वस्तु है इसे बतलाकर अपने संघमें दाखिल किया। यही नहीं बल्कि हज्जाम, अन्त्यज, गणिका आदि अधम और पापी गिने जानेवाले मनुष्योंको दयासे उन्होंने संघमें शामिल किये। उनमेंसे कितने ही तो बड़े उपदेशक बन गये।

विचारचन्द्र—गुरुजी, उन बेचारे यशोधरा और राहुल-का क्या हुआ?

गुरुजी—क्या हुआ! सुनो, ऐसे महापुरुषके कृत्यसे किसीकी हानि होती ही नहीं। यशोधरा और राहुल जिन्हें सोये हुए छोड़कर बुद्धदेव गये थे उन्हें फिर उन्होंने आकर जगाया—सच्ची तरहसे जगाया वे भी भिक्षु भिक्षुणी के संघमें शरीक हुए।

लड़के गौतमबुद्धके जीवनकी यह मनोहर वार्ता सुन बहुत प्रसन्न हुए। वार्ता लम्बी होनेसे आजके धर्मशिक्षणमें रोजसे कुछ ज्यादा समय लगा, परन्तु वह कहां गया यह न मालूम हुआ।

(४५)

गौतम बुद्धका मुख्य उपदेश ।

(१) गुरुजी—बालको, गौतम बुद्धके उपदेशका सब सार उनके जीवनमें ही है यह कहना बिलकुल यथार्थ है। इसीलिये मैंने तुमसे उनके जीवनका हाल विस्तारपूर्वक कहा। तो भी उनके उपदेशमेंसे कुछ चुने हुए सिद्धान्त एकत्र किये हुए तुम सावधान होकर सुनो। भगवान गौतम बुद्धने संसारमें, जरा व्याधि और मरण देखे। इनके आधारपर उनके अत्यन्त दयार्द्र हृदयमें यह एक बात चुभ सी गई कि वस्तु-मात्र क्षणिक हैं, और दुःखरूप हैं। अपने ऊपर दुःख पड़नेसे संसार दुःखमय है इस प्रकारका बोध तो बहुत साधारण मनु-ष्योंको भी हो जाता है किन्तु बुद्ध भगवानके बोधमें यह विशेषता थी कि उन्हें स्वयं दुःख भोगनेका प्रसंग नहीं हुआ था, बल्कि स्त्री-पुत्र लक्ष्मी आदि संसारके सब सुख उन्हें पूर्णरूपसे प्राप्त थे-तथापि एकमात्र ऊंची दयामय-वृत्तिसे उन्होंने स्वयं इस महान् सत्यका साक्षात्कार किया।

(२) संसार दुःख रूप है यह जान लेना तो बहुत सरल है किन्तु दुःखका निदान ढूंढ़ निकालना और उसके निवारण-के उपाय सोच निकालना इनमें बुद्धिकी सूक्ष्मता और परोप-कार वृत्तिकी आवश्यकता पड़ती है। बुद्ध भगवानने सोचा कि दुःखके बाहरके उपचार व्यर्थ हैं, वैद्यकमें जिसे रोगका निदा-

न अर्थात् बीज कहते हैं उसे खोज निकालना चाहिये और फिर उसका उपाय करना चाहिये। रोगके निदान किये बिना औषधि करना नीम-हकीमी है। इस प्रकार संसार-रूपी रोगके इस महान् चिकित्सकने (वैद्यने) विचारकर यह निदान किया कि सारे दुःख जीवनकी तृष्णामेंसे उत्पन्न होते हैं। 'मैं जीऊं, मैं जीऊं, चाहे जो हो, किसीको दुःख देकर भी जीऊं' यह जीवन-तृष्णा ही दुःखोंका मूल है। इसलिये अहन्ता अर्थात् आत्मवादका त्याग करना चाहिये और अनात्मवादका ग्रहण करना चाहिये, यह बुद्ध भगवानने दूसरा सिद्धान्त स्थिर किया। सिद्धार्थने यह देखा था कि उस समय लोग आत्मवादका आश्रय लेकर बहुत ही स्वार्थ-परायण हो गये थे। इस आत्मा (अहं) के मोहमे मनुष्य संसारमें असंख्य पाप करते थे इतना ही नहीं बल्कि यज्ञमें अगणित पशुओंका बलिदान देकर वे यही आशा किया करते थे कि मरनेके बाद हमारी आत्मा स्वर्गमें जायगी। अतएव आत्मवादके नाश होनेसे तृष्णा दूर होगी और तृष्णाके दूर होनेसे दुःखका नाश होगा यही उन्होंने सिद्धान्त निश्चित किया।

(३) तृष्णा और तृष्णामेंसे उत्पन्न होनेवाले 'उपादान' (रूप, रस, गन्ध आदि इन्द्रियोंके विषय ग्रहण करना) का नाश होनेसे, पुनर्जन्म और पुनर्जन्मके साथ जुड़े हुए जरा-मरण-व्याधि आदि दुःखोंका नाश हो जाता है—जिन दुःखोंको उस दिन राजकुमारने रास्तेमें आश्चर्य और शोकसे

आकुलित होकर देखे थे और जिनका उपाय ढूंढ़नेके लिये उन्होंने अभिनिष्क्रमण किया था।

(४) ऐसी दुःखरहित स्थितिका नाम 'निर्वाण' है। (निर्वाण अर्थात् बुझ जाना) मनुष्यके हृदयमें अहन्ता और राग द्वेषकी जो वृत्तियां हैं उनका बुझ जाना ही निर्वाण शब्दका अर्थ है। जिसको दर्द हो रहा हो उसके दर्द मिटने॰ पर स्वस्थताकी दशा आती है।

ये चार सिद्धान्त ही 'चार आर्यसत्य' हैं, अर्थात् ये सत्य सज्जनोंके स्वीकार करने योग्य हैं।

इस निर्वाण दशाके प्राप्त करनेका गौतम बुद्धने जो मार्ग खोज निकाला वह 'मध्यम प्रतिपदा' अथवा 'आर्य अष्टांग मार्ग' कहलाता है। गौतम बुद्धने अपने निजके अनुभव से यह देखा था कि जैसे भोग विलाससे सत्य दूर रहता है वैसे अत्यन्त देहकष्टसे भी दूर रहता है। वस्तुतः सत्यका मार्ग दोनों छोरोंके बीचमें है, और इस कारण वह 'मध्यम प्रतिपदा' अर्थात् 'बीचका मार्ग' कहलाता है। यही आर्य लोगोंका मार्ग है। इसके आठ अङ्ग हैं इसलिये वह आर्य अष्टांग मार्ग भी कहा जाता है।

ब्राह्मण धर्मके योगसूत्र आदि अनेक ग्रन्थोंमें जिसे पंच यम कहते हैं, और जैन धर्ममें जिसे पंचव्रत कहते हैं उनसे बहुत कुछ मिलते जुलते बौद्ध धर्ममे पंचशील हैं। वे पंच॰ शील निम्न लिखित प्रकारके हैं:—

(१) प्राणातिपात—अर्थात् हिंसा न करना।

(२) अदत्तादान—बिना दी हुई वस्तु न लेना—चोरी न करना।

(३) मृषावाद—झूठ न बोलना।

(४) मद्यपान न करना।

(५) ब्रह्मचर्य [illegible] न करना।

(४५)

मृत्युका राज्य।

रमाकान्त—गुरुजी आपने कल बौद्ध धर्मके सिद्धान्त बतलाये, उनमें—वस्तुमात्र क्षणिक और दुःख रूप हैं—यह सिद्धान्त सबका आधार है न?

गुरुजी—हां, गौतमबुद्धके जीवन चरित्रका हाल जो मैंने तुमसे कहा था उसे देखते हुये तुम्हारा कथन उचित प्रतीत होता है। वे राजमहलोंसे बाहर फिरने निकले थे, रास्तेमें वह बूढ़ा, वह जलोदर वाला रोगी और मुर्दा और उसके पीछे होता हुआ रुदन तथा हाहाकार इनको उन्होंने देखा था। तभीसे उनके दयालु हृदय पर, जीवन क्षणिक और दुःख रूप है इस बातका बड़ा असर पड़ा था और इसका इलाज ढूंढ़ निकालनेके लिये ही वे बाहर निकल पड़े थे॥

विचारचन्द्र—लेकिन गुरुजी, उन्होंने कोई इलाज तो ढूंढ़ नहीं निकाला।

गुरुजी—ढूंढ़ तो निकाला—'आर्य मार्गकी तो गवेषणा-की, लेकिन मैं तुम्हारे कहनेका भावार्थ समझता हूं। तुम्हारा कथन इस प्रकार है कि यदि मृत्यु मिटा दी होती और रोग शान्त हो जाते तो सचमुच भला किया यह कहा जाता। क्यों यह बात ठीक है न?

विचारचन्द्र—(कुछ हंसकर) हां महाराज।

गुरुजी–तो सुनो गौतमबुद्ध और किसा गोतमी नामकी स्त्री का जो आपसमें संवाद हुआ उसे मैं कहता हूं। किसा गो-तमी नामकी एक युवती थी। उसे एक सुन्दर बालक था। वह खूब हँसता, फिरता और खेलता था। इतनेमें वह एक रात्रि-को अचानक बीमार हुआ और सुबह होतेही बेचारा मृत्युके मुखका ग्रास बन गया। माता इस घटनासे पागल सी हो गयी और कोई उसे औषधि देकर फिर जीवित करे इस आशासे बालकके शवको हाथमें लेकर वह शहर शहर भटक-ने लगी। रास्तेमें एक बौद्ध भिक्षु मिला, उससे बडी विनयसे उसने कहा—"भगवन्! मेरे बालकको कुछ औषधि दो और जीवित करो।" भिक्षुने कहा—"बहिन, इसकी औषधि मेरे पास नहीं, पर मेरे एक गुरु गौतम बुद्ध हैं, उनके पास जा तो वे कुछ बतलायंगे।" किसा गौतमी बड़ा ही आशाके उल्लास में उसी तरहसे उस बालको लेकर गौतमबुद्धके पास गई, और कहा—"भगवन्! आप समर्थ हैं, मेरे बालकको कुछ औषधि देकर जीवित करो।" गौतमबुद्धने कहा—"बहिन,

इस बालकको यहां सुला दे और मैं कहूं वैसी कुछ राई ले आ, तो तेरा बालक मैं जीवित कर दूंगा।" यह उत्तर सुन किसी गौतमी प्रसन्न हुई और पहलेसे भी अधिक आशासे ज्यों ही वह राई लेनेके लिये दौड़ना चाहती थी त्योंही भगवान बुद्धने उसे क्षण भर खड़ा रखकर कहा—"बहिन, ऐसे मङ्गल कार्यके लिये शुभ स्थानसे राई लाना चाहिये, इस लिये ऐसे घरसे राई लाओ जिस घरमें कोई सगा प्यारा कभी न मरा हो।" वह युवती पुत्रके उस शवका विरह भी सहन न कर सकती थी और मानों अभी पुत्र जीवित ही है इस प्रकार उससे आलिङ्गन करती उसे हाथमें लेकर गांवमें राई लेने—बुद्ध भगवानने कहा था वैसी राई लेने—गई। एक घरमें गई वहां घर वालेने कहा "बहिन, राई ता है, चाहे जितना लो, किन्तु तू कहती है वैसा नहीं, मेरे घरमें महीना हुआ जब एक जवान पुत्र मर गया है, इस कारण लाचार हूं।" किसा गौतमी दूसरे घर गई, तीसरे घर गई, इस प्रकार सैकड़ों घर भटकी। किसी ठिकाने बाप तो किसी जगह मां, किसी जगह भाई तो किसी ठिकाने बहिन, कहीं पति तो कहीं पत्नी, कहीं बालक तो कहीं लड़की, कहीं मित्र तो कहीं नोकर इस प्रकार जहां जहां खोजती थी वहां कोई न कोई तो मरा हुआ बतलाया ही गया। किसा गौतमीने गौतमबुद्धके पास आकर सब कथा कह सुनाई। गौतमबुद्धनें इस अनुभवका यह मर्मरूप सिद्धान्त किसी गौतमीको समझाया कि

स्नेही संबन्धीके मरण रहित कोई घर नहीं, जो जन्म लेगा वह अवश्य मरेगा, और पदार्थ मात्र नाशवान हैं—किसी गौतमी संसार छोड़ भक्षुणी हो गई।

विचारचन्द्र—तो गुरुजी, इसका अर्थ तो यह है कि मृत्युका कोई इलाज ही नहीं।

गुरुजी—है ही नहीं। जो वस्तु जैसी है उसे वैसी ही जानना यथार्थ ज्ञान है। इलाज चाहे हो सके वा न हो सके किन्तु वैद्यको पहले तो जो वस्तुस्थिति हो उसका निर्णय करना चाहिये। गौतमबुद्धने इसी बातकी निर्णय किया। तुम कहोगे कि मृत्युका इलाज नहीं इस बातको कौन नहीं जानता? सभी जानते हैं, पर जानकर जैसा व्यवहार करना चाहिये वैसा व्यवहार करनेपर ही ठीक ठीक जाना कहा जाता है। गौतमबुद्धने यह बात एक निश्चित सिद्धान्त रूप से जानने और उसके अनुसार व्यवहार करनेका उपदेश किया था, किन्तु वस्तुत गौतमबुद्धने इतना ही नहीं किया। उन्होंने मृत्युकी औषधि भी खोज निकाली है, और वह यह है कि संसारमें तृष्णा—विषयतृष्णा—से ही रोग बढ़ता है और मृत्यु होती है; 'मैं जीऊँ, किसीको हानि पहुंचा कर भी जीऊँ और सुख भोगूँ' ऐसी हमारी मूर्खता भरी तृष्णा है जो विषय रूपी पानी पीनेसे बढ़ती है। इसलिये उसे न पीकर ज्ञान रूपी अमृतसे वह तृषा शान्त करनी चाहिये।

(७६)

अविरोध ।

लड़कोंने जैन धर्म और बौद्ध धर्ममें ब्राह्मण धर्मसे मिलती जुलती अनेक बातें देखीं । सबके मनमें यही हुआ कि तीनों एकसे ही धर्म हैं । गुरुजीने भी यह बात बहुत बार कही थी । तथापि इस संबन्धमें गुरुजीसे प्रश्न करनेसे कुछ विशेष बातें मालूम होंगी इस लक्ष्यसे एक विद्यार्थीने इस विषयकी चर्चा छेड़ी :

सुमन्त—गुरुजी, आपने कहा था कि जैन धर्मके अनुसार जगत्का कोई कर्त्ता ईश्वर नहीं, और सब कुछ कर्मानुसार होता रहता है, किन्तु ऐसा सिद्धान्त तो आपने वेद-धर्मके षट दर्शनोंमें भी बतलाया था ।

गुरुजी—ठीक ।

चन्द्रमौलि—और, महाराज, तप और वैराग्यका उपदेश भी उस धर्ममें है ।

गुरुजी—है ही ।

कान्तिलाल—स्याद्वाद जैसा भी कुछ है न !

गुरुजी—यह भी है ।

विचारचन्द्र—अहिंसा ?

गुरुजी—इस प्रसङ्गमें कुछ विस्तार पूर्वक उत्तर देना उचित है । मूल वेद-धर्ममें कितने ही यज्ञोंमें पशु-हिंसा होती

थी और कितने ही सादे दूध-घी के यज्ञ होते थे। जो पशु-हिंसा होती थी वह भी बहुत स्थानोंसे धीरे धीरे जाती रही और पशुके बदले व्रीहि (एक प्रकारके अन्न) का बलिदान दिया जाने लगा, फिर आटेका पशु बनाकर उसे होम करने का रिवाज शुरू हो गया। ज्ञानी पुरुषोंने पशु हिंसाका कुछ विलक्षण अर्थ कर, यज्ञमें से पशुहिंसा बिल्कुल ही निकाल डाली। उनके विचारानुसार हमारे हृदयका अहङ्कार ही पशु रूप है और इसे ईश्वरको समर्पण कर उसके यज्ञमें इसे बलिदान कर देना चाहिये। भागवत धर्मने जो वेद धर्मकी शाखा है हिंसात्मक यज्ञका बहुत ही निषेध किया है। श्री मद्भागवतमें नारद मुनि राजा प्राचीनबर्हिसे कहते हैं—"हे प्रजापालक राजा! यज्ञमें तुमने निर्दई हो हजारों पशुओंको मारा है, वे तुम्हारी क्रूरता याद करते हुये परलोकमें तुम्हारी बाट देख रहे हैं, वे इतने कुपित हैं कि ज्योंही तुम यहांसे परलोक में जाओगे त्योंही वे तुम्हें लोहेके शस्त्रोंसे काटनेको तैयार हो जायंगे।" इसमें से दो बात सिद्ध होती हैं। कोई कहे कि वेद धर्ममें पशु-हिंसा होती ही न थी तो यह कहना असत्य है; और उसके साथ यह भी स्पष्ट है कि वेद धर्मकी ही शाखाओंमें पशुहिंसा बन्द करनेका उपदेश बहुत प्रकारसे हुआ है। इस बातमें कोई आश्चर्य भी नहीं। हिन्दू धर्मकी तीनों सम्प्रदाय—ब्राह्मण, जैन और बौद्ध—एक ही जातिमें और एक ही प्रकारके जीवनमेंसे उत्पन्न हुई हैं, और एक ही महावृक्षकी शाखाएं हैं।

इस कारण अमुक सिद्धान्त केवल एक ही धर्म का हो यह सम्भव ही नहीं, किन्तु इससे यह न समझना चाहिये कि जैन धर्मका इस देशपर कुछ उपकार ही नहीं। सब सिद्धान्तोंमें अहिंसाके सिद्धान्तको परम आदरणीय बनानेका गौरव जैन लोगोंको ही प्राप्त है।

रमानाथ—गुरुजी, आपने कहा था कि गौतमबुद्ध एक महान अवतारकर पुरुष हुये थे, और तत्पश्चात् आपने उनके जीवन और उपदेशका जो वर्णन किया उसे देखते हुये भी ऐसा ही मालूम होता है। तब लोकमें यह क्यों कहा जाता है कि बुद्धावतार तो भगवानने असुरोंको भ्रममें डालनेके लिये लिया था ?

गुरुजी—भगवान ऐसा कभी न करेंगे। भगवान धर्मकी रक्षाके लिये अवतार लेते हैं, किसीको भ्रममें डालनेके लिये नही लेते। उनके उपदेशमेंसे कितनी ही भ्रान्तियां उत्पन्न हुई हैं यह बात ठीक है, जैसे वेद तुच्छ हैं, ईश्वर नहीं, आत्मा नहीं, सब शून्य है इत्यादि। जो इन भ्रान्तियोंमें पड़े उन्हें ब्राह्मण शास्त्रकारोंने असुर कह कर पुकारा, और उन्हें भ्रममें डालनेके लिये भगवानने बुद्धावतार लिया यह मान लिया। किन्तु यह सब बातें गौतमबुद्धके सच्चे उपदेशको न समझनेवालोंपर ही लागू होती हैं। सच तो यह है कि गौतमबुद्धने वेदकी निन्दा नहीं की, किन्तु यह बतलाया है कि ब्राह्मणोंको क्या जानना चाहिये और कैसा होना चाहिये।

यदि इतनी बातसे वेदकी निन्दा होती हो तो—

कहा भयो तप तीरथ कीन्हे । माला गहि हरि नामहि लीन्हे ।
तुलसी तिलक धरे का होवे । सुरसरि पान करे का होवे ॥
कहा भयो निगमागम बांचे । रागरंगके तत्वहिं जाँचे ।
कहा भयो षड्दर्शन जाने । वरण भेद उपभेदहिं माने ॥

ऐसे पद किस साहित्यमें नहीं ! स्वयं कृष्ण भगवानने भी गीतामें वेदके अर्थपर सरपच्ची करनेवालोंकी क्या निन्दा नहीं की ? इसके अतिरिक्त ईश्वर नहीं यह गौतमबुद्धने कभी नहीं कहा, किन्तु यह कहा है कि ईश्वरके अन्वेषणमें लगे हुये लोगोंको जो करना उचित है वह नहीं करते । इस कारण ही ईश्वरके विषयकी चर्चा उन्होंने निरर्थक बतलायी है । उनका कहना है कि एक मनुष्यको बाण लगा हो तो क्या वह शस्त्र-वैद्यके पास जाकर उसे निकलवाता है अथवा पहले यह विचार करने बैठता है कि अच्छा, इस बाणके मारने वाला कौन है ? यह बाण किस चीज़का बना है इत्यादि ? इस प्रकार जगत् नित्य है वा अनित्य, इसका कर्ता है वा नहीं, है तो कैसा है इत्यादि प्रश्नोंपर धार्मिक जीवनका आधार नहीं । अब विचार करनेपर, हमें ये प्रश्न निरर्थक नहीं मालूम होते, किन्तु जब लोग अपने सच्चे कर्त्तव्यको भूल जाते हैं और ऐसे प्रश्नोंके वादविवादमें पड़े रहते हैं, तब गौतमबुद्धने जैसा कहा था वैसा कोई कहे तो क्या

बुराई है ? यह तो सभी मानेंगे कि तारोंकी खोजमें भट-कने हुये पैरों तले कुंआ आ जाता है। इसे भूल जाना तो बहुत ही बुरा है। इसके अनुसार, जैन धर्ममें भी ईश्वरके न माननेका ठीक तात्पर्य कर्मकी महिमा बतानेका है। अपने अहङ्कारके नाश करनेके मतलब हीसे गौतमबुद्धने आत्मा नहीं यह कहा है। इसी प्रकार सब शून्य है यह जो बुद्ध भगवानसे कहा हुआ माना जाता है उसका अर्थ पाप पुण्यकी जवाबदारीके दूर करनेका नहीं, किन्तु संसारके मोह नष्ट करनेका है। हिन्दू धर्ममें जैसे शिव, विष्णुकी निन्दाके प्रकरण आ घुसे है इसी तरह बौद्ध, जैन और ब्राह्मण धर्मोंमें परस्पर निन्दाकी बातें आगई हैं। उचित दृष्टिसे देखते हुये, ये बातें हमारे धर्मोद्यानके सुन्दर फल पुष्प नहीं किन्तु उस उद्यानके बिगाड़ने वाले कांटे हैं। इसलिये इन बातोंकी सर्वथा उपेक्षा करना चाहिये।

इति।

शुद्धाशुद्धिपत्रम् ।

पृष्ठ	अशुद्धि	शुद्धि
१३	मुझ	मेरे
,,	राजाको	राजाके
,,	निकल	निकले
१६	सुय	सूर्य
२०	यह	वह
२६	बलदेवजीव	बलदेवजी
३७	धर्म मिक्षण	धर्म शिक्षण
३६	प आवे तोः	पा आवे तो
,,	शि नक्षणहीं	शिक्षण नहीं
४२	पदाथ	पदार्थ
४३	दृष्टान्त	दृष्टान्त
४५	उपर	ऊपर
५८	चदा	चदा
६६	यथा सभव	यथा संभव
७१	धर्मशास्त्रकारों	धर्मशास्त्रकारों
८५	ततपश्चत्	तत्पश्चात्
६३	दीधायु	दीर्घायु
६६	ान	भान

पृष्ठ	अशुद्धि	शुद्धि
,,	अतथि	अतिथि
१०२	वषर्मे	वर्षमें
१०३	रऔ	और
११३	आर	और
११६	कुह्वाडी	कुल्हाड़ी
११७	अएव	अतएवं
११८	शरार	शरीर
११९-२१	गुरूजी	गुरुजी
१२३	कभी	कमी
१२४	रूपसे	×
,,	ाबलकों	बालको
१२५	चंकित	चकित
१२६	जन्ज	जन्म
१४५	परमात्मका	परमात्माका
१४७	दिशाआ	दिशाओं
१५४	४१	४२
,,	सामयिक	सामयिक
१७१	किसी गौतमी	किसा गौतमी
१७३	४६	४७